CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

10-3

पत्रलेखा के पत्र

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

ग्रालय
राणसी-५
/40A

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री:

परमादरणीया बहिनजी (डॉ० प्रेमलताजी शर्मा)

को

सविनय —

[illegible]
25.2.'85

क 4/40A

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पत्रलेखा के पत्र

क्र4/40A
आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

जगन्नाथ पाठक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

● पत्रलेखा के पत्र
PATRALEKHA KE PATRA

● सर्वाधिकार : डॉ० जगन्नाथ पाठक
© Dr. Jagannath Pathak

● प्रथम संस्करण : १९८१
First Edition : 1981

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

● मूल्य : १६-५०
Price : 16-50

● प्रकाशक : दास पब्लिशर्स
२०-डी, बेली रोड, इलाहाबाद
Publisher : DAS PUBLISHERS
20-D, Beli Road, Allahabad.

● मुद्रक : मुद्रण केन्द्र
२०-डी, बेली रोड, इलाहाबाद
Printer : MUDRAN KENDRA
20-D, Beli Road, Allahabad.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
परतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

दिवंगता पत्नी
श्रीमती पानकली देवी
की
सजल स्मृति को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"हो सकता है, कोई पत्रलेखा कहीं आपके आस-पास आपकी सहानुभूति के एक कण की मौन प्रतीक्षा कर रही हो। आप कृपया अपने व्यस्त समय से कुछ अंश निकालें और उस पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। वह आपकी बहुत बड़ी भूल होगी, अगर आपने उसे अपनी सहानुभूति "भिक्षा" समझकर दान में दी। वस्तुतः आपकी सहानुभूति, उसका जन्मसिद्ध अधिकार है……और आप विलम्ब कर दिया तो सम्भव है उसकी चिर प्रतीक्षा का सेतु टूट जाय और उसके चरण पुनः किसी अच्छोद-सरोवर के तट की ओर चल पड़ने के लिये वाध्य हो जायँ…… ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पत्रलेखा के पत्र

—रवीन्द्रनाथ के नाम	१–२
—बाणभट्ट के नाम	३–१५
—तारापीड़ के नाम	१६–२४
—विलासवती के नाम	२५–३३
—वैशम्पायन के नाम	३४–४२
—महाश्वेता के नाम	४३–५७
—कादम्बरी के नाम	५८–६५
—चन्द्रापीड़ के नाम	६६–१४९
—पत्रलेखा : रवीन्द्रनाथ की दृष्टि में	१५१–१५५
—एक अनाम पत्र और ग़ालिब का चित्र	१५७–१६०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

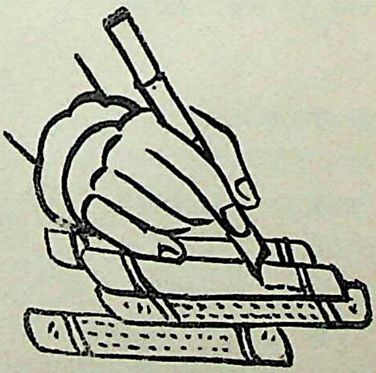

पत्रलेखा के पत्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रवीन्द्रनाथ के नाम

महामहिम गुरुदेव,

शताब्दियां बीत गयीं। महाकवि वाणभट्ट के साहित्य में मेरी उपेक्षित स्थिति एवं दयनीयता का प्रथम बार उद्भावन आपने ही किया। आपकी सूक्ष्म अन्तर्भेदिनी दृष्टि के आलोक में मेरी सुप्त अन्तर्व्यथाएं अकस्मात् जाग पड़ीं। किन्तु इतने अन्तराल के बाद मेरे मरुभूत झाड़-झंखाड़-भरे रूखे अस्तित्व पर आपके स्नेह का बादल उमड़ आया और उसके अणु-परमाणु को सराबोर कर गया। तब मेरी अनुभूत व्यथा की झंकृति सहस्रों हृदयों में उमड़ी और उन्हें विचलित कर गयी।

इसके लिए मैं उस अघटित घटना करने वाली विलक्षण नियति को ही धन्यवाद दूंगी। आप तो स्वयं धन्य हैं। आपकी लेखनी का स्पर्श पाकर जाने कितनी निरीह नारियां धन्य हो चुकी हैं। मैं भी उनमें अपने को एक मानती हूँ। जाने क्यों आज मैं अपने को अमृत मानकर अपने आप में सिमटने लगी हूँ। इस जीवन के प्रति मेरा घोर उपेक्षा का भाव शिथिल होने लगा है।

अच्छोद सरोवर के गहरे नीले जल में अपने को अर्पित करने के पूर्व मैंने अनुभव कर लिया था कि अब हमेशा के लिए मिट जाने वाली हूँ, किन्तु ऐसा न हो सका। मेरी आत्मा सम्पूर्णतया बड़ी व्याकुलता के साथ, एक अपूर अतृप्ति की असहज अनुभूति से ग्रस्त होकर दिग्दिगन्त में भटकती रही है। किन्तु जब आपने अपने एकान्त स्नेह-नीड़ में मुझे स्थान दिया तो लगा, मेरे दग्ध अस्तित्व में नये पंख निकल आये हैं। मैं आपके सघन पंखों के भीतर सिमटी हुई बैठी हूँ। मेरे आस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पास का वातावरण चेतना के आलोक से सिहर उठा है। मेरे अस्तित्व की प्रत्येक किरण को खा जाने वाला "खग्रास" प्रभावहीन हो चुका है।

किन्तु मात्र इतनी आशंका अब भी मेरे मन के अज्ञात कुहर में चमगादड़ की भाँति लटक रही है कि पुनः कोई बाणभट्ट पैदा न हो जाय और पुनः किसी कादम्बरी की सृष्टि न हो जाय ! और,...कहीं ऐसा तो नहीं कि आपके रूप में उसी बाणभट्ट ने पुनः जन्म लिया है और अपने किये पर पश्चात्ताप करके मुझे अपनी स्निग्धच्छाय कृपा से अनुगृहीत किया है ! अस्तु, आपको इस क्षुद्र 'पाखी' का शतशतः प्रणाम !

विनीता
पत्रलेखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाणभट्ट के नाम

कवीश्वर,

अपना परिचय यदि बहुत थोड़े में दूँ तो इतना मात्र कह सकती हूँ कि मैं तुम्हारी एक 'रचना' हूँ। तुम्हारी महनीय रचना 'कादम्बरी' की एक तुच्छ एवं सामान्य नारी पात्र। जैसे समुद्र में जल के एक कण का अस्तित्व होता है वैसा ही कुछ मेरा भी अस्तित्व वहाँ कहा जा सकता है। यह एक विचित्र संयोग की बात है कि तुम्हारी वह महीयसी रचना अधूरी रह गयी। किन्तु यह तुम्हारी विलक्षण कल्पना-शक्ति का ही चमत्कार है जो वह अधूरी होकर भी संसार में बिखरे असंख्य सहृदयों को तृप्त करती रहेगी। तब सन्तृप्ति के आनन्द से मत्त शायद ही कोई ऐसा सहृदय होगा, जिसकी दृष्टि मुझ हतभाग्य पर एक क्षण के लिए भी केन्द्रित होगी, उस मुझ पर जो तुम्हारी सम्पूर्णतया एक अधूरी रचना हूँ।

यह मेरा दुर्भाग्य है जो मुझ अधूरी रचना के गहन दर्द से तुम भी अपने कथानायक चन्द्रापीड़ की भाँति ही तटस्थ एवं निरपेक्ष रहे। तुम्हारा कथानायक एक राजकुमार था, एक दुर्दम विजयलिप्सा से ग्रस्त महाराजाधिराज का इकलौता लाड़ला। उसने यदि ऐसा कुछ किया तो वह कुछ क्षम्य भी कहा जा सकता है। किन्तु तुम तो ऐसे न थे! तुमने जीवन की धूप-छांव को झेला था, दर-दर की ठोकरें खायी थीं, नाना विषम परिस्थितियों में छलांग लगाकर अनुभव अर्जित किये थे। फिर तुम कैसे कन्नी काट गये मुझसे? एक अनाथ नारी के प्रति तुम्हारे द्वारा किया गया उपेक्षा का व्यवहार कितना गम्भीर अपराध है!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं आज इस विशाल अच्छोद सरोवर में इन्द्रायुध के साथ छलांग लगा लूँगी और हमेशा के लिए अपने अस्तित्व के इस कटु अनुभव से मुक्त हो जाऊँगी, किन्तु फिर भी तुम अपने उस अपराध की काली छाया से मुक्त न हो सकोगे ।

मेरा सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह था कि मैं एक राजकन्या के रूप में जन्मी थी । मेरे जन्मकाल में कितना हर्षोल्लास का वातावरण होगा, तुम कल्पना कर सकते थे । मेरे अभागे माता-पिता, कुलूतदेश के अधिपति अब संसार में नहीं रहे । उन्हें एक दम्भी, विजयलिप्सा से ग्रस्त महाराजाधिराज ने मार डाला और उनकी लाड़ली दुहिता मुझको बंदीजनों के साथ अपने राजकुल में लाकर जीने के लिए विवश कर दिया । वह तो उस करुणामयी वत्सला महारानी विलासवती का अंक था, जहां मैं पली और अपने लघु जीवन की विगत विभीषिकाओं को क्रमशः भूलती गयी । किन्तु सब कुछ भूल कर भी जीवन के इस अन्तिम दिन भी उस स्मृति से मुक्त नहीं हो सकी हूँ, कि मैंने एक राजकन्या के रूप में इस कठोर संसार में जन्म लिया था । एक राजकन्या की यह भी नियति हो सकती है, क्या यह तुम सोच नहीं सकते थे !

कुछ ऐसा न समझना कि मैं तुम्हारे प्रति एक विकट अन्यथाभाव से ग्रस्त हूँ । तुम्हारी एक क्षुद्र-सी रचना होने का सौभाग्य मेरे लिये गर्व का विषय है । मैं वास्तव में जीवित रहूँगी, यह अलग बात है कि आज मैं अपने इस भौतिक पिण्ड के अस्तित्व की व्यथा न झेल पाने के कारण इससे छुटकारा पाने के लिये इस सरोवर के तट पर उपस्थित हूँ । तुम जैसे कीर्तिशेष होकर भी साहित्य के आकाश में चन्द्र की भाँति निरन्तर प्रकाशमान हो उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे साथ विद्यमान रहूँगी । किन्तु तुम तब भी मेरे अस्तित्व के कलंक से मुक्त न हो सकोगे । वह धब्बा कभी धुलने वाला नहीं । इसमें न तो तुम्हारा दोष है और न मेरा । नियति का ही यह उपक्रम कह सकती हूँ, जो कभी मेरे अनुकूल न रही ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम मेरी इस क्षुद्रता के लिए मुझे क्षमा करना। मैं अपने आपको आज किसी प्रकार उस भावव्यथा के प्रकाशन से विरत नहीं कर पा रही हूँ, जिसे तुम्हारे प्रति यदा-कदा अनुभव करती रही हूँ। तुमने मुझे एक विषम चक्रव्यूह में डाल रखा था और स्वयं तटस्थ हो गये थे। हो सकता है यह तुम्हारी विवशता थी कि तुम सामान्य जनों के सुख-दुःख पर कहाँ तक ध्यान देते। तुम्हें तो कादम्बरी के रूप में एक महाप्रासाद का निर्माण करके अनन्त काल के लिए अपनी कीर्ति अक्षुण्ण करने की त्वरा थी। तुम इस बात के लिए कैसे अवसर निकाल सकते थे कि तुहारे उस महाप्रासाद की नींव में कितने निरीह प्राणियों के रक्त-मांस का उपयोग हो रहा था। वह तुम्हारा महाप्रासाद भले ही अधूरा बन कर रह गया, फिर भी तुम्हारी कीर्ति का दिग्दिगन्त तक प्रसार अनन्त काल तक वह करता रहेगा।

तुम्हारी लेखनी के विषय बनकर अनेक निर्जीव पदार्थ भी सजीव हो उठे, किन्तु मेरा दुर्भाग्य था, जो मैं सप्राण न हो सकी। एक वेदना की सहज, किन्तु गहरी अनुभूति से मैं निरन्तर उद्वेलित रही। महाराज तारापीड़ का विशाल राजकुल प्रतिदिन किसी न किसी उत्सव के आयोजन से उल्लसित रहता था। उल्लास के चतुर्दिक् वातावरण में मैं भीतर से कितनी विकीर्ण रही हूँ, तुम नहीं समझ सके थे। अथवा समझ कर भी मेरे उस आन्तरिक अन्यथा-भाव से तटस्थ बने रहे। क्या वसन्त, क्या वर्षा, मैं सदा निर्लिप्त एवं भीतर ही भीतर व्याकीर्ण रही हूं। मेरे सामने कचनार के पेड़ आपादमस्तक फूलों से लद जाते और मुझे लगता कि कुछ हुआ ही नहीं, कुछ अन्तर ही नहीं आया। मेरे भीतर वही एक नैराश्य का, एक दुरन्त विकीर्णता का पतझड़ कायम रहता।

मैंने बचपन से ही सुन रखा था कि महाराजाधिराज ने अपने लाड़ले राजकुमार के लिए नगर से बाहर एक विद्या-मन्दिर का निर्माण करा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखा है और उनकी शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था की है। अपने एकान्त कक्ष में मैं कभी-कभी सोचा करती कि अपने माता-पिता के यहां मेरी भी शिक्षा के लिये ऐसी ही कुछ व्यवस्था होती। फिर भी मेरी कलात्मक अभिरुचि के अनुसार मेरी शिक्षा की व्यवस्था राजकुल के प्राचीर के अन्तर्गत ही सहज भाव से होती रही। नृत्य और वाद्य के अनेक प्रकारों का मैंने समुचित अभ्यास कर लिया था। मैंने अनुभव किया था कि महारानी के निर्देशानुसार मेरी अन्य सहेलियों की अपेक्षा मुझ पर कुछ अधिक ही ध्यान दिया जाता था।

धीरे-धीरे, जब मैंने बाल्य को पार किया तब मेरे अंग-प्रत्यग में कुछ नये परिवर्तनों का आभास होने लगा। अपने सौन्दर्य के लिए भी मैं प्रशंसित होने लगी थी। किन्तु उन प्रशंसाओं से मेरे आन्तरिक अनुभव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मैंने अपनी प्रत्येक उपलब्धि को बड़े सहज भाव से लिया और उसे अपने पास एक अप्रार्थित सिद्धि के रूप में रखा।

मैं उस दिन पहले कल्पना नहीं कर सकी थी कि मुझे महाराज के लाड़ले कुमार के समक्ष उनकी 'ताम्बूलकरंकवाहिनी' के रूप में उपस्थित होना होगा। एक वृद्ध कंचुकी के साथ मुझे उनके पास पहुँचने के लिए दूसरे दिन प्रातः काल ही जाना होगा, इस कल्पना से मैं बहुत व्याकीर्ण हुई। मैंने राजकुमार को कुछ ही दिन पूर्व विद्यामन्दिर से शिक्षा समाप्त होने पर आते हुए देखा था। उस अपार भीड़ में राजकुमार चन्द्रापीड़ और उनके साथी वैशम्पायन की छवि देखते ही बन रही थी। मैं कुछ क्षण के लिए विभोर हो उठी थी। एक मनुष्य का ऐसा भी भाग्य होता है, जिसे देखने के लिए इतनी संख्या में लोग एकत्र हो जाते हैं, जिसके ऊपर फूलों की वर्षा की जाती है, धान के लावे बिखेरे जाते हैं। विधाता के विधान को समझ पाना सम्भव नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निश्चय ही जिसने मुझे राजकुमार के साथ रहने के सौभाग्य लाभ का समाचार सुनाया उसने ही मेरे भाग्य की भी सराहना की। कुछ देर तक लिए सबकी भावना के प्रवाह में मैं भी वह पड़ी, किन्तु कुछ ही क्षण बाद ऐसा लगा, मैं रुक गयी हूँ, एक रेत के टीले से लग कर रह गयी हूँ और वह प्रवाह मुझे छोड़कर जाने कितनी दूर निकल गया है। तुम मेरी उस आन्तरिक दयनीयता की कल्पना नहीं कर सके। एक भीषण अवसन्नता ने मुझे सब ओर से घेर लिया था। मैं उस राजा के कुमार की दासी बनने जा रही थी, जिसने मेरे माता-पिता की हत्या की थी !

किन्तु यह बड़ी विचित्र बात थी कि कुमार चन्द्रापीड़ ने मुझे एक दासी से बढ़कर गौरव दिया और उनके प्रत्येक व्यापार में उनके साथ मेरा सामंजस्य क्रमशः बढ़ता गया। उनके हृदय में अपने पिता के आज्ञानुगत होने के लिए जितना उत्साह था उतना ही अपने परिजनों के सुख-दुःख का ध्यान रखने का सहज गुण था। उन्होंने मेरी किसी भी बात को अन्यथा न लिया और बड़ी सरलता से किसी प्रकार का आघात न पहुँचाते हुए अपनी बात कह दिया करते थे। मैं उनके इस गुण पर मुग्ध थी। कुमार के साथ मेरी निकटता इस सीमा तक बढ़ गयी कि समय-समय पर किसी-किसी विषय में मैं भी अपना अनिमंत्रित सुझाव उन्हें दे डालती। उस समय वे मुस्करा पड़ते और मेरे सुझाव का यथासम्भव प्रत्याख्यान नहीं करते।

इतना होने पर भी कुमार के प्रति मेरे मन में वह भाव कभी उदित नहीं हुआ जिसमें एक अधिकार का मद सम्मिलित होता है। मैं एक दासी की सीमा से बाहर नहीं जा सकती थी और कुमार भी अपने अतिशय सरल स्वभाव के बावजूद आश्रयदाता की सीमा से हट नहीं सकते थे। किन्तु एक संवेदनशील कवि के रूप में तुम मेरे उस संकीर्णता-भरे वातावरण में यापन की व्यथा का अनुभव नहीं कर सकते थे ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतनी तटस्थता, इतनी उपेक्षा तुम करोगे, ऐसी सम्भावना नहीं की जा सकती थी ! किन्तु जिसका जन्म ही उपेक्षा की संकीर्ण कारा में यापित होने के लिए हुआ, उसके लिए तुम कर ही क्या सकते थे ! यह मेरी क्षुद्रता ही कही जायेगी अगर मैं यहाँ मात्र तुम्हें दोष दूँ ।

मैं तुम्हें अपनी व्यथा की कहानी आदि से अन्त तक यहाँ सुनाऊँ, यह अभीष्ट नहीं । क्योंकि मैं तुम्हारी रचना हूं । तुमने अपने हृदय में मेरी संरचना की है और मुझे एक रूप दिया है । यह भिन्न बात है कि मेरे उस रूप में, उस संरचना में कोई अतिरिक्त आकर्षण तुम उत्पन्न नहीं सके । एक साधारण नारी की निजी व्यथाओं का, आशा—आकांक्षाओं का तुम्हारे यहाँ कोई मूल्य नहीं । यदि तुम इतना ध्यान देते रहते तो कादम्बरी-लेखन का तुम्हारा स्वप्न कैसे पूरा होता । यह संयोग ही कहा जा सकता है कि तुम्हारी कादम्बरी भी मेरे ही समान अधूरी रह गयी । वह शीशा अपूर्ण ही रहा, किन्तु उस शीशे के भीतर का एक छोटा हिस्सा कितना चकनाचूर हो चुका था, इस पर तुम्हारा ध्यान अन्त तक नहीं गया ।

तुमने अपनी प्रसिद्ध रचना 'हर्षचरित' में बताया है कि तुम 'इत्वर' (आवारा) भी रह चुके हो । एक इत्वर का हृदय जितना उदार एवं सहज संवेदनशील होता है उतना किसी का नहीं होता । तुमने अपने जीवन में हजारों नर-नारियों से परिचय स्थापित किया होगा । उनके हृदय की अतल गहराई में प्रवेश किया होगा । उनके सुख-दुःख के साथ सहानुभूति प्रदर्शित की होगी । क्या मैं उनमें कोई स्थान नहीं रखती ?' हन्त, तुम्हारी संवेदना का एक कण भी मेरे अधिकार में नहीं आ सका !

कुमार चन्द्रापीड़ की छाया के रूप में अनुगत बनाकर तुमने मुझे अपनी दृष्टि में शायद बहुत बड़ी प्रतिष्ठा दी थी । एक राजकन्या के रूप में न रह कर एक परिचारिका का जीवन जीऊँ यह मेरे भाग्य का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चमत्कार भले ही था, किन्तु उसके इतने सुकुमार अस्तित्व को इतनी दयनीयता में रखकर अपने कर्त्तव्य से मुँह मोड़ लेना कहाँ तक न्यायसंगत था, तुमने क्षण भर के लिए भी नहीं सोचा।

कुमार चन्द्रापीड़ को एक मनोरंजन के लिए जीती-जागती पुत्तलिका की आवश्यकता थी। राजकुमार थे वे! मैं उस पुत्तलिका के पद के लिए उपयुक्त समझी गयी। मैं युवा थी, सुन्दर थी, राजकुमार के अत्यन्त सुकुमार चित्त के रंजन की कला में दक्ष हो सकती थी, किन्तु यहीं मात्र केवल तुम्हारा भी लक्ष्य बना रह गया। तुमने एक क्षण के लिए यह नहीं देखा कि मैं भी एक अनुभूतिप्रवण हृदय वाली नारी थी। किसी सम्भ्रान्त राजकुल की अभागिन राजकन्या थी। मेरे भी मन में कभी भावनाओं की लहरें उठा करती होंगी। मेरा भी चित्त अपने रंजन के लिए किसी समानधर्मा का निकट से परिचय प्राप्त करना चाहता होगा। मेरे यौवन से कसमसाते अंग-प्रत्यंग की शिराओं में उष्ण रक्त की धारा संचारित रही होगी।

एक युवा भावनाप्रवण पुरुष का सान्निध्य हो और एक युवती का हृदय अविचलित रह जाय। यह तुम्हारे पावन देश में भले ही सम्भव हो, मेरे जैसे अत्यन्त साधारण व्यक्ति के हृदय में उस समय एक आग का भड़क उठना उसी प्रकार अनिवार्य था, जिस प्रकार शुष्क तृण-समुदाय के बीच एक स्फुलिंग का प्रवेश हो जाने पर सम्भव होता है। मैं नहीं समझ सकी, और अन्त तक नहीं समझ सकी कि मेरी उपस्थिति से कुमार के हृदय में कोई तरंग एक क्षण के लिए भी उदित हुई अथवा नहीं। वे हमेशा मेरे साथ सहज बने रहे, मुझे देखकर प्रसन्न हुए, फिर भी हम दोनों की परस्पर दूरी बनी रही। वही दूरी जो एक स्वामी की होती है।

मैंने अनुभव किया कि कुमार के अकाशधर्मा व्यक्तित्व के विशाल आयाम में एक क्षुद्र पाखी के रूप में मैं कितनी ही दूरी तक उड़ान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरती रहूं, वह निर्लिप्त ही रहेगा। मेरे डैनों का प्रत्येक पर धीरे-धीरे शिथिल होकर निकल जायेगा। मैं थक कर, गिर पड़ूँगीं, और वह अविकम्प ही, एकरस ही बना रहेगा। फिर भी जो अपना कर्त्तव्य है, सेवा की जो वृत्ति का अपना स्वीकृत धर्म है, उससे रंचमात्र भी विचलित न होऊँ, यही अपनी सीमा है। ऐसा ही कुछ सोच कर एक पुत्तलिका की भाँति उस प्रस्तरमूर्ति, हाँ उन्हें प्रस्तरमूर्ति ही कहूंगी, के सामने नाचती रही। यहाँ तक कि मेरे पैरों में छाले पड़ गये, फिर भी मैं नाचती रही, नाचती ही रही।

तुमने सम्राट हर्षवर्धन से प्रथम साक्षात्कार के अवसर पर बड़े तपाक् से कहा था कि तुमने दार-परिग्रह भी किया था। एक 'इत्वर' पुरुष के जीवन में जो महिला पत्नी के रूप में प्रतिष्ठित होती है उसके दुर्भाग्य का, उसकी मूक वेदना का कोई अन्त नहीं होता। उसका जीवन अपने पतिदेव की प्रतीक्षा में यापित हो जाता है। उसके सुख-दुःख में साथ देने के लिए अग्नि के समक्ष प्रतिज्ञा करने वाला पति अपना कर्त्तव्य कब का भूल चुका होता है। यदि भूला-भटका कभी घर आ भी गया तो उसे वह प्रणय के स्थान पर डाँट-फटकार से पुरस्कृत करके फिर निकल जाता है और मौज से दुनिया का चक्कर लगाता रहता है। तुम भी कहीं ऐसे ही इत्वर महानुरुष तो नहीं थे ? यह मेरी कल्पना मात्र है, तथ्य इसके विपरीत भी हो सकता है। मेरी अनुभवशून्यता के लिए मुझे कृपया क्षमा करना।

अपने साहित्य में मुझ जैसी एक निरीह अबला की प्रतिष्ठा करके तुम शायद अपने उसी उपेक्षाशील जीवन का तो एक दूसरे प्रकार से संकेत नहीं दे गये !

कुमार को मैं अपने समग्र अस्तित्व के साथ समर्पित होकर उपलब्ध करना चाहती थी, इसका यह अर्थ नहीं था कि मैं उनकी 'महिषी' के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद पर प्रतिष्ठित होकर उन सभी भौतिक सुख-भोगों से अपने को संतृप्त करना चाहती थी। एक परिचारिका यदि ऐसी कल्पना स्वप्न में भी करे तो वह उपसहनीय होती है। मैं अपनी सीमा में रहकर ही उन्हें उपलब्ध करना चाहती थी, आत्मसात् करना चाहती थी, पर ऐसा न हुआ, एक क्षण के लिए भी ऐसा न हुआ। तुमने जरा भी ध्यान न दिया। मैं अतृप्ति की, एक विकट आन्तरिक पिपासा की स्थिति में पहुँचकर तड़फड़ाती रही और तुम प्रकृतिस्थ रहे। तुम्हारी रस की धारा बहाने वाली लेखनी मेरे प्रसंग में सूख गयी, सम्पूर्ण रूप से 'कठुआ' गयी। हाय, बाणभट्ट, वात्स्यायनवंश के सबसे उज्ज्वल नक्षत्र, मेरे प्रसंग में तुम भी म्लान हो गये, यहाँ तक कि तुम भी प्रस्तरमूर्ति ही बनकर रह गये!

मेरी दयनीयता को तुमने तब सीमा तक पहुँचा कर ही छोड़ा जब कुमार का गन्धर्वकन्या कादम्बरी के साथ प्रणय-प्रसंग घटित हुआ। यही नहीं, मुझे गन्धर्वदेश हेमकूट जाना पड़ा और दोनों के परस्पर प्रणय-नाटक की सूत्रधार बनी। आज वह नाटक अपने भरत-वाक्य तक पहुँचने के पूर्व ही बिखर गया है। यह सब तुम्हारे कल्पना-लोक में घटित हुआ, ऐसा नहीं। मैं तुम्हारी कल्पना की रचना मात्र हूं। यदि मुझे ऐसा समझ कर तुम निर्लिप्त रहे, इससे बढ़कर मेरा अपमान नहीं हो सकता था। कुमार के प्रति अत्यन्त आन्तरिक स्नेह से समर्पित होकर जहाँ कुछ पाना चाहती रही हूँ वहीं लगा, कि किसी अत्यन्त कोमल हृदय की एक कुमारी द्वारा बड़े सहज भाव से लूटी जा रही हूँ। भीतर से सम्पूर्णतया टूट कर भी अपने को सम्हाले रखने की उस दयनीयता में पहुँचा कर तुम तो सफल हो गये, किन्तु मेरे अस्तित्व की प्रत्येक पंखड़ी बिखर गयी।

बाहर से तो ऐसा लगा, कि कुछ भी घटना नहीं घटी। सब कुछ यथावत् चलता रहा। कुमार के पीछे उनके अश्वरत्न इन्द्रायुध पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बैठ कर मैं हेमकूट गयी, कादम्बरी से परिचित हुई, तपस्विनी महाश्वेता के दर्शन से कृतकृत्य हुई, किन्तु मेरे भीतर के संसार में कैसे ववंडर उठते रहे, मुझे समग्र रूप से झकझोर देने वाला वात्याचक्र किस हद तक मुझे छिन्न-विच्छिन्न कर गया, इसकी कहानी सबसे अज्ञात रही। हां, एक दिन तपस्विनी महाश्वेता ने मुझे एकान्त में मिलने के लिए बुलवाया। बड़ी कठिनाई से देवी कादम्बरी से मुक्त होकर उनसे मिली तो उन्होंने कुमार और मेरे बीच के परिचय की चर्चा का प्रसंग छेड़ दिया। मुझे लगा, कि देवी की गहरी तेजोदीप्त आँखें मुझे तह तक निहार रही हैं। मैं फूट पड़ी और देर तक उनके अंक में सिर डाल कर सिसकती रही। उन्होंने बड़े सहज भाव से मुझे सहलाया और शान्त किया। स्वयं बोलीं कि इस रहस्य को कभी प्रकाशित नहीं करेंगी। मैंने उस क्षण जीवन में प्रथम बार अपने प्रति सहानुभूति के सहज शैत्य का परिचय पाया था। लगा था, मेरे सम्मुख प्रसाद का महासागर उमड़ रहा है और मैं उसमें गोता लगाने के लिए उद्यत हूं। किन्तु दूसरे ही क्षण वह महासागर जाने कहाँ वाष्प बन कर तिरोहित हो गया।

यह एक मूक प्राणी इन्द्रायुध मेरे साथ इस सरोवर में छलांग लगाने के लिए उतावाला हो रहा है। कुमार के जीवन में मेरा और इसका प्रवेश एक अनुगत सेवक के रूप में लगभग एक ही समय में हुआ है। हम दोनों में केवल इतना ही अन्तर है कि यह एक पशु है और मैं मानव। यह मूक है और मैं वाचाल। किन्तु जहाँ तक सेवा में समर्पित होने की बात है यह किसी प्रकार मुझसे कम नहीं है। कभी-कभी तो मैं इसके प्रति भ्रातृ-भाव की कल्पना करके एकान्त में इससे बातें करती रही हूँ। मुझे ऐसा तब अनुभव हुआ है, मेरे प्रत्येक वाक्य का तात्पर्य यह पूरा समझ रहा है, क्योंकि इसकी रह-रह कर फड़फड़ाती हुई नासा और रोमांच इस प्रकार के अनुमान में सहायक थे। यह जब भी अपनी ओर आती हुई मुझे देखता तभी अगले पैरों से जमीन कोड़ने लगता और एक बिलक्षण प्रकार से नथुने फड़फड़ा कर मेरे स्वागत के लिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उठने का असफल प्रयास करता। तब पिछले पैरों के बंधे होने के कारण वह मेरी अगवानी न कर पाने की विवशता अपनी एक क्षण के लिए उदास हुई आँखों से प्रकट करता।

कुमार कभी-कभी इसे कशाघात की यन्त्रणा देते तो मैं ऊपर से नीचे तक सिहर उठती। इतने अनुगत, इतने निरीह प्राणी के साथ कुमार का यह बर्ताव मुझे कभी पसंद न आया। फिर भी मैंने देखा कि कुमार के प्रति इसकी भावना रंचमात्र भी परिवर्तित न हुई। कुमार इसे हृदय से चाहते थे। इसके लिए स्वयं अपने हाथों से हरित तृणों की पूलियां बनाकर देना उनका नित्य कर्म था। जब कभी इसके शरीर का कोई भाग किसी प्रकार छिल जाता तब कुमार स्वयं उसका उपचार करते और इसके स्वाथ्य के प्रति उनकी सतर्कता भी कम न थी। मैं एकान्त में मिलती तब अपनी व्यथा अवश्य इससे सुनाती, किन्तु सहानुभूति में इसका क्षण भर के लिए उदास हो जाना मुझे और भी व्यथित कर जाता। जिस प्रकार कुमार के अपने प्रति तटस्थ रहने की व्यथा से मैं विकीर्ण थी, शायद उसकी सबसे अधिक तीव्रता से संसार में यदि कोई दूसरा प्राणी अनुभव करता था तो यही एक मूक पशु था, हाय, यह कुछ भी न बोल कर भी मुझसे बहुत कुछ कह जाता था !

यदि तुमने मुझे इन्द्रायुध के रूप में एक सहारा न दिया होता तो मैं सम्भवतः उस आत्मपीड़ा की तीव्रता से अपने को तब न उबार पाती। आज जब कुमार की बिछुड़न की पीड़ा मेरे लिए असह्य हो उठी तब यह प्राणी भी मेरे साथ इस संसार से बिदा होने के लिए त्वरित हो उठा है। पशु और इतना सहानुभूतिप्रवण ! इस समय यह मेरे साथ मृत्यु के अर्पित होने के अवसर की व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रहा है। यह एक क्षण के लिए भी इस संसार में जीवित रहना नहीं चाहता, फिर भी मैं इसे अपने स्वार्थवश रोक रही हूं। स्वार्थ मात्र इतना ही कि मैं अपनी वेदना इस लेखनी के माध्यम से कुछ तुम तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहुँचा सकूं। शायद इस मूक प्राणी के हृदय की वेदना को मेरी लेखनी में व्यक्त करने की क्षमता नहीं है। मैं इतना मात्र तुम से कह सकती हूं कि यह भी एक तुम्हारी ही रचना है, किन्तु इसकी व्यथा हमेशा के लिए अलिखित ही रह जायेगी।

मेंने अन्तरतम के मरुमय देश में आजीवन सन्ताप की ज्वाला के अतिरिक्त कुछ भी अनुभव ही नहीं किया। क्या यह सरोवर उस सन्ताप का शमन कर सकेगा; फिर भी नियति की यही इच्छा है कि मैं इस अस्तित्व की जलन इसमें ही शान्त करूँ; तुम एक रचनाकार के रूप में मेरे प्रति इतना तटस्थ हो सकते थे, ऐसी कल्पना नहीं कर सकती थी। भले ही तुम्हारे नायक की एक सीमा थी, जो सब प्रकार से मेरे प्रति सहज होकर भी कृपाकृपण बने रहे, किन्तु तुम तो मेरी आन्तरिक पीड़ा को आकलित कर सकते थे; तुम तो मुझे सहला सकते थे; मुझ दुखियारी को स्नेहोपचार द्वारा आश्वस्त कर सकते थे; मेरे प्रति तुम्हारा यह विकट मौन उस शिलास्तम्भ के समान अडिग खड़ा रहा, जिस पर उत्कीर्ण कोई अक्षर पढ़ा नहीं जा सकता था। एक अतृप्ति बनी ही रह जाती, कि लिखने वाले का अभिमत क्या रहा होगा। तुमने मेरी रचना की मात्र इतना ही इसके पीछे रहा होगा कि मेरी रचना होनी थी, किन्तु उसका और अभिप्राय सम्भव है, तुम्हारे मन के किसी कोने में ऐसा विचार उत्पन्न ही न हुआ हो। क्या तुमने अपनी रचना को एक कलाकार की भाँति संशोधन के लिए बार-बार नहीं दुहराया; एक बार निर्मित उसमें काट-छांट के लिए कोई गुंजायश नहीं थी? यदि तुमने उसे दुहराया होता तो शायद मुझ पर तुम्हारा अवश्य ध्यान जाता। एक क्षण के लिए तुम मेरे प्रसंग तक आते-आते अवश्य ठिठक जाते। मेरे अपूर्ण चित्र में कुछ अवश्य रेखाएं और रंग भरते। तब मैं शायद इतनी व्याकीर्ण, इतनी अस्तव्यस्त न होती। कुछ मेरा भी व्यक्त रूप-रंग रहता, किन्तु ऐसा तुम क्यों करते? तब एक साधारण, अत्यन्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सामान्य परिचारिका के व्यथा-विस्फोट के स्पर्श से तुम्हारे धवल-गृह के कँगूरे ढहने लग जाते, तो तुम क्या करते? ऐसा ही होता आया है। परस्परा के पुजारी तुम लोग अपने देवालय के निकट क्यों कर एक ऐसी मूर्ति की प्रतिष्ठा करते, जिसकी छाया मात्र से तुम्हारे देवता अपवित्र हो सकते थे? तुम बड़े चतुर निकले। फिर भी तुम अपनी रचना को अधूरी छोड़ गये। जिसकी नियति में अधूरापन हो उसे पूर्ण करने की क्षमता भला किसमें हो सकती है?

अव मैं तुमसे विदा लेती हूं। क्षमा करना अपने इत्वर जीवन में तुमने भी अनेक अपराध किये होंगे। स्मरण करो, ऐसी अनेक नारियां तुम्हें मिली होंगी, जिन्होंने तुम्हें क्षमा की होगी। मैं अपने इस तुच्छ अपराध के लिए तुम से पुनः क्षमा माँगती हूँ और विरत होती हूँ।

तुम्हारी उपेक्षिता
पत्रलेखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तारापीड़ के नाम

मेरे धर्मपिता,

अपने अन्तःपुर की क्षुद्र परिचारिकाओं के बीच बड़े छुटपन से पली मुझ दासी की याद, सम्भव है कभी आपको आ जाती हो। मेरा नाम "पत्रलेखा" सम्भवतः आपके अन्तःपुर में ही रखा गया था। मेरे बचपन का नाम कुछ और ही रहा होगा, जो मुझे याद नहीं। अपने भुजबल से आपने पूर्व में उदयाचल, दक्षिण में सेतुबन्ध, पश्चिम में मन्दराचल और उत्तर में गन्धमादन तक के सभी राजाओं को पराजित करके अपने अधीन कर रखा था। यही कारण था कि वे समय-समय पर आपको प्रणाम निवेदित करने के लिये उज्जयिनी आया करते थे। आपके पराक्रम को स्वीकार करना उनके लिए गौरव का विषय था। उन्हीं दिनों जब आप अपनी प्रचण्ड सैन्यशक्ति के साथ अपना पराक्रम प्रदर्शित करने तथा राज्य का विस्तार करने के उद्देश्य से निकल पड़े थे तब भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर में एक छोटा-सा कुलूत नाम का देश था। जिसके अधिपति थे मेरे पिता। कुलूत सुरम्य पर्वत घाटियों में बसा हुआ था और बाहर के प्रभावों से मुक्त था। मेरे पितामह ने उसे अपने अधिकार में लेकर उस पर शासन किया था। हम एक भिन्न जाति के लोग थे। जो पश्चिम से आकर वहाँ बस गये थे। पितामह के बाद कुलूत देश का शासनतन्त्र मेरे पिता के हाथ में आया। वे बड़े स्वाभिमानी और जनप्रिय शासक थे।

आपने उन्हें अपने अधीनस्थ होने के लिये संदेश के साथ अपना दूत भेजा, किन्तु मेरे पिता ने आपके अधीनस्थ होने की अपेक्षा संग्राम में कट मरना उचित समझा। फल यह हुआ कि आपने अपनी प्रबल सैन्य-शक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के साथ कुलूत देश पर आक्रमण कर दिया। तब मैं अपने पिता-माता की एकमात्र पंचवर्षीया कन्या थी। जब कुलूत पर युद्ध के बादल उमड़े तब अनेक शक्तिशाली वीरों के साथ मेरे पिता ने आपकी प्रबल सैन्यशक्ति का जमकर सामना किया। उन दिनों हम राजभवन में छिपाकर रखे गये थे और बाहर भीषण युद्ध के नगाड़े बज रहे थे। इसी बीच यह सूचना मिलते ही कि आपने अपने खड्ग से मेरे पिता की हत्या कर डाली है, मेरी मां उस युद्ध की अग्नि में कूद पड़ी थी, किन्तु बाद में सुना कि वे भी आपके ही शस्त्र-प्रहार से मारी गयीं।

मेरे पिता और माता के मरते ही आपके दुर्दान्त सैनिकों ने विजय की दुन्दुभि बजाते हुए हमारे दुर्ग में प्रवेश किया और कुलूत के अनेक वीरों को बंदी बना लिया। आप कुछ ही देर बाद दुर्ग में स्थित अन्तः-पुर तक पहुँच गये। मैं उस समय अपने मन पर एक भीषण आतंक के मारे रो नहीं पारही थी कि मुझे 'कुलूत देशाधिपति की इकलौती कन्या' इन शब्दों से परिचय के साथ आपके संमुख उपस्थित किया गया था। मैं आपकी आकृति की विकरालता देखते ही चीख उठी थी। उस समय मुझे आप साक्षात् यमराज जैसे लगे थे। आपकी भौहें तनी थीं, और आँखें बिलकुल तमतमा रही थीं। आपके हाथ में वही खड्ग पड़ा था, जो युद्ध में मारे गये मेरे पिता और माता के साथ अनेक शूर वीरों के रक्त से रंजित था। मध्याह्न सूर्य की किरणों के पड़ने से वह और भी चमक रहा था।

आपने एक क्षण तक अपनी उन्हीं लाल-लाल आँखों से मुझे देखा। मैं और भी सहम गयी। चारों ओर आपके सशस्त्र सैनिक खड़े थे। मैं भाग सकती, ऐसा भी सम्भव न था। किन्तु मैंने अनुभव किया, आपकी आँखें प्रसन्नता की विलक्षण चमक से भरने लगी हैं। मुझे आपने अपने निकट आने के लिये संकेत किया। किन्तु मैं आपके विशाल और डरावने व्यक्तित्व से इस प्रकार अभिभूत एवं आतंकित थी कि स्वयं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपके निकट नहीं जा सकी । तब एक सैनिक ने मुझे कुछ बल लगाकर आपके पास कर दिया और अब मैं आपकी भुजाओं में जैसे आबद्ध थी । मैं पुनः उसी क्षण चीख पड़ती, किन्तु आपने कुछ मुस्कुराते हुए मुझे उठा लिया और मेरी ठुड्ढी पकड़ कर पुचकारते हुए बोले,—"बेटी घबरा नहीं, मैं तेरा पिता हूं । तू अब मेरे यहाँ उज्जयिनी के अन्तः-पुर में पलेगी" । यह कह कर मुझे आपने अपने एक सेनापति के हाथ में सौंप दिया था । मैं आपके कथन के अर्थ से तब भी अपरिचित रही, किन्तु मुझे स्मरण है, आपके मुँह से निकले "बेटी" शब्द ने मुझे कुछ आश्वस्त किया था ।

तब कुलूत से अनेक बंदी उज्जयिनी लाये गये। बन्दियों में युवा स्त्रियों की संख्या अधिक थी । रात-दिन चलकर हम उज्जयिनी पहुँचे । तब विजय-यात्रा से लौटे आपका उस नगर के निवासियों ने बड़ी धूम-धाम से स्वागत किया था । मुझे आपकी पट्टमहिषी विलासवती ने अपने संरक्षण में रखने की इच्छा प्रकट की और आप भी उनके उस प्रस्ताव से सहमत हो गये थे ।

मैं, इतना सब कुछ अपने सामने अचानक कैसे परिवर्तित हो गया, नहीं सोच सकी थी । नियति की लीला से बिल्कुल अपरिचित होने के कारण मेरा दुःख शिथिल होता गया और धीरे-धीरे अपने माता-पिता की स्मृति मेरे मानस-पटल पर धूमिल होती गयी । किन्तु वह, अपनी एक काली रेखा उस पर हमेशा के लिए छोड़ गयी थी । मैं इस बात को आजीवन, चाह कर भी भूल न सकी थी कि मैं एक राजकन्या हूं, भले ही आपके अन्तःपुर की परिचारिकाओं के बीच पली । और, शायद मैं यह भी आजीवन भूल न सकी कि आपने मेरे माता-पिता की हत्या की और मुझ अनाथ दुहिता को शरण दी । मेरे मन में जब भी आपकी याद उभरी तब आपके प्रति दो प्रकार के परस्पर विपरीत से भाव उभरे और मैं उनके बीच आन्दोलित हुई । अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माता-पिता के रक्त से रंजित आपके कठोर खड्ग को देखते ही मैं कुछ कर गुजरने के लिए मन ही मन तत्पर हो जाती, किन्तु दूसरे ही क्षण महादेवी के दुलार और पुचकार भरे शब्द याद आने लगते और मैं रुक जाती। वैसे मैं आपका अहित कर भी क्या सकती थी? एक अनाथ दुर्बल लड़की सप्तद्वीपा वसुमती के प्रबल प्रतापी शासक महाराजाधिराज का क्या बिगाड़ सकती थी?

बाद में जब मैं कुछ बड़ी हुई तो मालुम हुआ, आपने अपने इकलौते राजकुमार चन्द्रापीड़ के अध्ययन के लिये उज्जयिनी से बाहर एक विद्यामन्दिर का निर्माण कराया है। उस विद्यामन्दिर में राजकुमार और उनके एक और मित्र के अध्यापन के लिए बड़े प्रयत्न से देश के नाना कलाओं और विद्याओं के विशेषज्ञ विद्वानों को एकत्र किया है। मैं सोचने लगी कि यदि मेरे भी पिता होते तो मेरे लिए अवश्य ऐसी ही कुछ व्यवस्था करते। मैं ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी मेरे चिन्तन के विषय भी बढ़ते गये। मैं कभी-कभी सोचा करती, क्यों इतने सारे लोग आप जैसे कुछ राजकुल के लोगों की सेवा में लगे रहते हैं? क्या उन कुछ लोगों की सेवा में यापित हो जाने मात्र के लिए उन्हें जीवन मिला है? मैं उन प्रश्नों का उत्तर कुछ भी सोच न पाती। धीरे-धीरे कुछ कलाओं में मेरी अभिरुचि स्वयं उत्पन्न हो गयी और क्रमशः उनमें निपुण हो गयी।

मैं जब कभी एकान्त में होती तब दर्पण में अपना रूप निहारती। आपकी पट्टमहिषी मेरे रूप को सराहना करतीं और मुझे अपनी सभी परिचारिकाओं से अधिक स्नेह करतीं। तब मैं धीरे-धीरे अपने को और अधिक प्रसाधित होकर उनके समक्ष प्रस्तुत होने के लिये सचेष्ट हो जाती। मुझे कभी-कभी अनुभव होता कि आप अपनी पट्टमहिषी के साथ होते और मुझे किसी प्रकार दूर से देख लेते तब मेरे सम्बन्ध में दोनों कुछ-कुछ अवश्य बातें करते। आप दोनों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐकान्तिक बातचीत का तब मुझे पूरा अर्थ लग गया था जब गुरुकुल से अध्ययन के पश्चात् लौटे अपने युवा राजकुमार के लिये मुझे उनकी "ताम्बूलकरंकवाहिनी" के रूप में नियुक्त किया गया था। तब मुझ सामान्य दासी के लिए वह पद बड़ा ही सम्मानजनक लगा था और मैं अपने पद की गुरुता की कल्पना से उल्लसित हो उठी थी। किन्तु कुछ ही दिन बाद मुझे लगा था, वह पद मेरे लिए एक गुरुतम भार था। मैं अज्ञात रूप से आपके राजकुमार की यौवनोद्दीप्त अंगकान्ति से प्रभावित होती गयी और धीरे-धीरे उनके प्रति मेरे मन में प्रणय का एक क्षुद्रतम भाव जागरित होता गया। आपके विनीत और सुकुमार प्रकृति के राजकुमार के मन में भी मेरे प्रति स्नेह का भाव लक्षित होता था, किन्तु सम्भवतः उनका वह अपने परिजनों के प्रति सहज भाव था। उसमें मेरे लिए कुछ भी विशेष न था।

मैं जब कभी आपके राजकुमार के कक्ष में होती, भित्ति पर अवलम्बित आपके विशाल चित्र पर मेरा ध्यान चला जाता। उस चित्र में भी आपकी भौंहें तनी हुई अंकित थीं और हाथ में वह खड्ग भी अंकित था जिससे आपने मेरे पितृ-कुल का संहार किया था। आप शायद कल्पना नहीं कर सकते कि मेरी उस समय क्या स्थिति होती होगी! आपके पास अपने पराक्रम, शौर्य और ऐश्वर्य प्रदर्शित करने के अतिरिक्त समय कहां था कि मुझ जैसी परिचारिकाओं की आन्तरिक स्थिति पर आपका ध्यान जाता?

आपने जब अपने राजकुमार को युवराज के पद पर प्रतिष्ठित किया था तब उज्जयिनी में एक बड़ा उत्सव सम्पन्न हुआ था। मैंने अपने जीवन में प्रथम बार वैसा आयोजन देखा था। आपने जब अपने सबल हाथों से पवित्र नदियों तथा सरोवरों के जल से भरे कलश को उठा कर कुमार को अभिषिक्त किया था तब मैंने प्रथम बार आपकी आँखों को आर्द्र देखा था। आपकी आँखों में अश्रुजल! वह दृश्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखकर मेरी आँखें भी लगभग छलछला गयी थीं। उस दृश्य को और लोगों ने देखा और प्रायः सभी भर आये थे। उस दिन आपका पितृत्व सफल हो रहा था। इतना ही नहीं, प्रेमवश आपने अपने हाथों से अपने प्यारे युवराज को पकड़ कर सिंहासन पर वैठाया था।

युवराज चन्द्रापीड़ आपके ही पद-चिन्हों पर दिग्विजय यात्रा के लिए चल पड़े थे। मैं भी उनकी छाया की भाँति यात्रा में अनुगत रही। यह आपके कुल की परम्परा थी, अतः युवराज ने आप द्वारा विजित वसुन्धरा पर पुनः विजय प्राप्त करने के लिए वह यात्रा की थी।

मैंने एक क्षुद्र परिचारिका होकर भी उस प्रकार की यात्रा के विरुद्ध ही अपने विचार अनुभव किये थे। किन्तु उन्हें आपके चरणचिन्हों पर चलने वाले कुमार के समक्ष प्रकट करती, ऐसा मेरे लिए सम्भव न था। आप जैसे महाबलशाली चक्रवर्ती महाराजधिराज युद्धाग्नि को यदि प्रज्वलित करते रहेंगे तो इस पृथ्वी पर मानव के रक्त की नदियाँ प्रवाहित हो उठेंगी। युद्धों में उन निरीह प्राणियों की हत्या होगी जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया। आपके दुर्दान्त सैनिक सहस्त्रों वृद्धों के युवा पुत्रों को विना कारण मार डालेंगे और हजारों नवविवाहित युवतियों को वैधव्य की ज्वाला में आजीवन झुलसना पड़ेगा। यह सब आपके द्वारा छेड़े गये युद्धों का दुष्परिणाम होगा। इससे केवल आपके शौर्यदम्भ की पुष्टि होगी और वसुमती का कुछ भाग आपके अधिकार में आ जायेगा। क्या इसके लिए ईश्वर आपको क्षमा करेगा ? मैं यह सब कुछ आपसे एकान्त में पूछना चाहती थी। किन्तु अपने क्षुद्र वयस् और दयनीय स्थिति की कल्पना करके मौन हो जाती। आपके प्रिय तनय-रत्न कुमार चन्द्रापीड से भी पूछते-पूछते रह गयी थी। मानव-जीवन के साथ यह क्रूर परिहास कब तक चलेगा, मैं नहीं जानती। क्या करुणा नाम का कोई संवेदन आप जैसे प्रशासकों से हृदय में किसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षण उदित नहीं होता ? आप जैसे लोग यदि करुणा भी करें तो मैं विश्वास नहीं कर कर पाऊँगी, क्योंकि वह आप द्वारा किये जा रहे अभिनय का अंग मात्र होकर रह जायेगी।

मुझे आपकी ओर से जो मिला वह क्या मेरे लिए सचमुच सौभाग्य का सूचक था ? एक दुर्बल युवा नारी को अपने प्रिय पुत्र की परिचारिका बना कर मेरे साथ भी क्या वही क्रूर परिहास तो नहीं किया था आपने ? मैं जानती हूँ, इसमें केवल आपका ही हाथ नहीं, परममगतामयी महादेवी का भी इसमें योग था। मैं भी तो एक प्रतापी किन्तु भाग्य-हीन पिता की बेटी थी, राजकन्या थी ! किन्तु आपके सुकुमार तनय की अनुगत दासी बन कर रह गयी। यहीं तक आप सोच सकते थे। आपके हृदय में शायद वह संवेदन नहीं है। मुझे गोद में उठा कर "बेटी" शब्द से सम्बोधित किया था। निश्चय ही आपकी "बेटी" के रूप में आपके राजकुल में मैं पली, किन्तु यह जो आप ने मेरे साथ परि-हास किया वह कोई सहृदय पिता अपनी कन्या के साथ कर सकता था ? आपको अपने पुत्र के सुख-दुख का अवश्य ध्यान रहा। किन्तु मुझ पर उसके साथ रहने से क्या गुजरेगी ऐसा आपने कभी सोचा ?

आपके प्रिय पुत्र का प्रणय-व्यापार गन्धर्वराज-कन्या देवी कादम्बरी से चल पड़ा। मैं उन दोनों के बीच माध्यम बनी। अपनी आँखों के सामने अपने हृदय को खण्ड-खण्ड होकर विखरते देखा। फिर भी मौन रही। कुछ भी न बोली। भीतर से आपके तनयरत्न के समर्पित होकर भी अपने को उनकी अनुगता बनाये रही। किन्तु अपने साथ हुए इस क्रूर परिहास के लिये आपको दोष दूँ यह भी मेरे पक्ष में उचित नहीं होगा। आप मेरे धर्म पिता अवश्य थे। वह मेरा ही दुर्भाग्य था कि उस क्रूर परिहास का पात्र बनी।

आपके पुत्र पर आपका वंशानुगत संस्कार था। वे उसी संस्कार के अनुगत होकर चले। किन्तु इतना होते हु ए भी उनके हृदय में अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सामान्य परिजनों के प्रति सहज स्नेह का भाव था। फलतः मैंने उनसे पर्याप्त स्नेह पाया। यह मेरे पक्ष में दैव का प्रबल प्रातिकूल्य था जो अपने समर्पण की तृप्ति मुझे न मिल सकी। आज तक अतृप्त हूँ। एक भयंकर अतृप्ति से आर्त इस जीवन को जीती रही हूँ।

आज आपके उसी प्रिय तनय के हृदय का स्फोट हो गया है। वे अपने प्रिय मित्र का विरह नहीं सहन कर सके। उनका शरीर अच्छोद के तट पर पड़ा है। देवी कादम्बरी और महाश्वेता वहाँ उपस्थित हैं। गन्धर्वराज के परिवार के और भी लोग आ जायेंगे। जब आपको इस दुर्घटना की सूचना मिलेगी तब अपने परिवार के साथ कुछ दिनों में आप भी आ जायेंगे और आकाशवाणी के अनुसार पुनः कुमार के जीवित होने की प्रतीक्षा करेंगे। कुछ काल के उपरान्त कुमार पुनः जीवित हो उठेंगे और आप अपने पुत्ररत्न को उपलब्ध करके पुनः उल्लसित होंगे। उसी समय कुमार का गन्धर्व राजकन्या के साथ पाणि-ग्रहण घटित होगा।

क्या तब आपकी दृष्टि उस भीड़ में खोई मुझे अचानक ढूँढ़ने के लिए व्याकुल हो उठेगी? यदि ऐसा हुआ, और मैं आपको याद आ गयी तो समझेंगे कि मैं कहीं आपके डर से आस-पास छिप गयी हूँ। क्योंकि जब भी आप मेरे सामने आये हैं मैं एक प्रकार से डर कर छिप गयी हूँ। आपके सामने होने से सदा कतराती रही हूँ। मैं आपके हाथ में उस खड्ग को देख पाने का सामर्थ्य नहीं रख सकी हूँ जो मेरे माता-पिता के रक्त से रंजित हो चुका था। वह आपके और मेरे बीच भाव-साम्य होने में प्रबल बाधक था। आप जिस प्रकार उस खड्ग से मुक्त नहीं हो सकते थे, उसी प्रकार मैं आपके प्रति मन में अनुभूत कुछ विपरीत विचारों से मुक्त नहीं हो सकती थी। आपकी "बेटी" होकर भी मैंने आपको अपने प्रति अपराधी के रूप में ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुभव किया है। भले ही मैं उस अपराध के लिए क्षमा कर दूँ, किन्तु मेरा हृदय जो आपके पुत्र-रत्न के प्रणय-ताप से लगभग जल चुका है और कई खण्डों में बिखर चुका है, कभी क्षमा नहीं कर सकेगा।

मैं चाहूँगी जब भी आप अपने युवराज को पूर्ण राज-पद का भार सौंप कर अवकाश ग्रहण करें तब कुछ समय के लिए अपने भुजबल से विजित देशों के प्रत्येक ग्राम-नगर में जाँय और देखें कि आपके उस क्रूर खड्ग ने कितनी नारियों को पुत्रहीन और कितनी को विधवा बना कर दुखी जीवन जीने के लिए बाध्य किया है। सम्भव है तब आपके हाथ से वह खड्ग स्वयं छूट कर गिर जाय। बस मेरी आप से यही एक अन्तिम प्रार्थना है।

आपकी—धर्मदुहिता
पत्रलेखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विलासवती के नाम

मेरी माँ,

मैं अपने सपाट जीवन में यदि कुछ कहीं विशेष महत्व की उपलब्धि अनुभव करती रही हूँ तो वह एक मात्र तुम्हारा स्नेह ही है, जो मुझ मातृ-पितृ-हीना को निरन्तर मिलता रहा है। मैं जब से बन्दी जनों के साथ उज्जयिनी लायी गयी और तुम्हारे अन्तःपुर में परिचारिकाओं के बीच पलती रही तब से तुमने मेरे निराश और उदास जीवन में आशा और वात्सल्य का संचार किया। मेरा बोझिल मन बहुत कुछ तुम्हारा सहज दुलार पाकर हल्का हुआ। खेद है कि उस स्नेह और दुलार के प्रतिदान में मैं कुछ न कर पायी। वस्तुतः मैं कर भी क्या सकती थी? बस केवल इतना हुआ कि तुम्हारी आज्ञा स्वीकार कर तुम्हारे लाड़ले कुमार की ताम्बूलकरंकवाहिनी होकर छाया की भाँति अनुगता बनी रही। मैं कुमार की सेवा में कहाँ तक समर्पित हो सकी, मेरा समर्पण कहाँ तक सार्थक हुआ, मैं नहीं जानती। केवल इतना जानती हूँ, मुझे अपने समर्पण से तृप्ति नहीं मिली। मैं असन्तृप्त ही आज तुमसे, इस संसार से बिदा ले रही हूँ।

मैंने अपने बाल्यकाल में तुम्हारे पति महाराधिराज के हाथ में जब से वह खड्ग देखा, जो मेरे माता-पिता के उष्ण रक्त से रंजित था, तब से मेरे कोमल मन में एक सहज वितृष्णा के साथ आतंक के भाव ने प्रवेश पा लिया। और आज, जब मैं अपने धूमिल अस्तित्व का अन्त करने जा रही हूँ, उससे मुक्त नहीं हूँ। मैं आजीवन नहीं समझ पायी कि ये भयानक युद्ध क्यों हुआ करते हैं? मानव एक-दूसरे के सुख को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छीन कर क्यों इतना प्रसन्न होता है ? महाराजाधिराज की भौंहें अपने पराक्रम और शौर्य के दर्प से मुझे सदा तनी हुई दिखायी पड़ी हैं। मैं उन्हें देखकर घबरा उठी हूँ। किन्तु जब मैंने तुम्हें देखा, तुम्हारी शीतल गोद में अपना मुँह छुपा कर जब-जब मैं विलखकर रो पड़ी हूँ, तब-तब तुमने मुझे अपने अंकवार में भर लिया है और तभी मानव के प्रति एक मधुरतम भाव-तरंग मेरे उस मानस की गहराई में उभर आयी।

प्राय: तुम अपनी परिचारिकाओं के बीच से मुझे अलग एकान्त में बुलवा लेतीं और राजकुल के व्यवहारों से परिचित करातीं। तुमने मेरे मन में कलाओं के प्रति आकर्षण जगाया और उन्हें सीखने के लिए प्रेरित किया। तुमने स्वयं अपने हाथों से मेरे बाल सँवारे, मुझे नाना प्रकार के वस्त्र और आभूषण पहनाये—अवन्ति देश के प्रबल प्रतापी सम्राट् की पट्टमहिषी से इतना स्नेह पाकर निश्चय ही मैं अपने सौभाग्य-गर्व से उल्लसित हो उठी थी। किन्तु वह मेरा गर्व स्थायी न रह सका। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं, मेरा ही निर्मम भाग्य मुख्य कारण था। तुमने बड़े स्नेह से अपने लाड़ले कुमार के लिए मुझे ताम्बूलकरंकवाहिनी का पद दिया और एक वृद्ध कंचुकी के साथ यह सन्देश देकर उनके पास भेजा कि तुमने मुझे अपनी दुहिता के रूप में पाला है। महाकुलीन राजवंश मे जन्मी हूँ। मेरे प्रति तुम्हारा बहुत ही स्नेह और पक्षपात है। मैं तुम्हारे लाड़ले कुमार की छाया बन कर आजीवन यापित हुई, किन्तु वह यापन मुझे दूर तक रिक्तता से भर गया है। मैं आज सम्पूर्णतया खाली हो चुकी हूँ। कुछ ऐसा भी नहीं जो तुम्हारे लाड़ले से मुझे स्नेह नहीं मिला, किन्तु यह मेरा ही दुर्भाग्य था जो मैं उस स्नेह-भार को आत्मसात नहीं कर पायी और उसके विपरीत एक प्रचंड रिक्तता से भर गयी। मैंने तुम्हारा स्तन्य पान नहीं किया, इस कारण तुम मेरी माँ नहीं हो. ऐसा मैं नहीं मानती। इस संसार में मुझे जीने का जो अवसर मिला है, जो कुछ यहाँ सीख सकी हूँ उसका एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मात्र श्रेय तुम्हें है। निश्चय ही तुमने मुझे पुत्री की भाँति पालन किया है। किन्तु जब तुमने मुझे अपने लाड़ले कुमार के लिए एक परिचारिका के रूप में भेजा तो मेरे प्रति तुम्हारा यह निर्णय किस सीमा तक उचित था, यह मैं सोच नहीं सकी हूँ। शायद तुम्हें वह मेरे लिए किया गया तुम्हारा सबसे बड़ा उपकार लगा होगा। और मैं भी अपनी उस अचेत अवस्था में उसे तुम्हारे स्नेह का ही एक प्रतिफल मान बैठी थी। किन्तु तब यह नहीं सोचा था कि कुमार के साथ रहकर, उनकी छाया की तरह अनुगत होकर मैं भीतर से इस सीमा तक बिखर भी जाऊँगी।

मेरे विनय और शील के कारण कुमार का प्रसाद मुझ पर सदा समभाव से बना रहा। मुझ परिचारिका के लिए इससे बड़ा और क्या लाभ हो सकता था? किन्तु मैं अपनी सीमाओं से कुछ और ऊपर उठकर उन्हें आत्मसात् कर लेना चाहती थी, जो मेरी सबसे बड़ी दुर्बलता थी। अन्ततः मैं एक युवा नारी थी। मात्र कुमार के मनोरंजन के लिये तुम्हारे द्वारा अर्पित कोई "खिलौना" न थी। किन्तु मुझे यही लगा है, कुमार ने, और तो और तुमने भी मुझे "खिलौना" ही समझ लिया था।

तुम जानती हो, कभी-कभी बच्चे अपने खिलौने तोड़कर प्रसन्न होते हैं। सचमुच, बाहर से तो नहीं, भीतर से, अनजाने ही कुमार ने कई खण्डों में मुझे तोड़ डाला है। मुझे अपने इस टूटने का अनुभव बहुत धीरे-धीरे हुआ था। और उस अनुभव ने मुझे एक सीमा तक रिक्तता से भर दिया था। ऐसा लगता, कुमार की मैं सर्वस्व हूँ। किन्तु कुमार मेरे कुछ भी नहीं, कुमार पर मेरा रंच मात्र भी अधिकार नहीं। क्या मैं अपनी इस आन्तरिक पीड़ा को तुमसे प्रकट कर सकती थी? यदि मैंने भूल कर ऐसा भी किया होता तो तुम्हारी ओर से मुझे "पगली" की संज्ञा न मिली होती? उस दिन जब मैं युवराज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुमार के साथ सुसज्जित करेणुका पर सवार थी और उनसे लगभग कुछ अलग-अलग सिमटी हुई बैठी थी तब निश्चय ही तुमने अपने अन्तःपुर के परिजनों के साथ मुझे भी दूर से देखा होगा। उस समय कुमार की जय-जय कार हो रही थी। क्या तुमने एण क्षण के लिए उस समय मेरे विष्य में, मेरी उस दयनीयता के विषय में सोचा होगा? शायद कुमार की शोभा के लिए स्थापित राजत आतपत्र आदि अनेक जड़ पदार्थों में मैं भी एक तुम्हें लगी हूँगी। एक परिचारिका की हैसियत वाली के लिये उससे बढ़कर और सम्मानजनक पद और क्या हो सकता था? मैं अपने संवेदन की तीव्रता में भीतर से जितनी विकीर्ण हो रही थी उतनी ही बाहर से प्रकृतिस्थ एवं प्रसन्न थी! मैंने इस प्रकार के द्विधा भाव-बोध आगे चलकर जीवन में बहुत बार अभ्यस्त कर लिए थे। वह मेरे लिए एक विकट परीक्षा का अवसर था। मैं उसमें उत्तीर्ण हुई थी। यदि मेरी ओर से कुछ भी शिथिलता होती तो मैं संवेदन की उस तीव्र अनुभूति मे मूच्छित होकर करेणुका से गिर पड़ती और तब कुछ ओर ही दृश्य होता।

मैंने अपनी किसी अज्ञात अन्तःप्रेरणा से अपने यौवन के उस आरम्भकाल में ही आर्या देवरक्षिता के साथ राजकुल की सीमाओं से बाहर निकल जाने का अपना विचार व्यक्त किया था और तुमने मुझे रोक दिया था। हो सकता है, तुमने अपने मन में पहले से ही कुमार के मनबहलाव के लिए एक सुन्दर खिलौना देने का निर्णय ले लिया हो। जाने क्यों, तुम्हारी स्निग्ध सहानुभूतियों के निरन्तर प्राप्त होने पर भी फूलों की सुरभि से महमहाता और वीणा तथा मुरज की मन्द्र गम्भीर ध्वनियों से गूंजता राजकुल का वातावरण मेरे लिए बहुत आकर्षक नहीं रहा था। मैं छाया में निरन्तर रह कर भी उसके सुख से निर्लिप्त सी हो उठी थी। मुझे बाहर के कठोर आतप की पीड़ा ही जाने क्यों आकृष्ट कर रही थी! मैं जानना चाहती थी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि महाराजधिराज और उनके सम्भ्रान्त परिजनों के आहार के लिए जो मूल्यवान् सामग्री आ रही थी उसकी उत्पत्ति-भूमि कौन सी है और किन लोगों के प्रयास से वैसे पदार्थ हमें उपलब्ध हो रहे हैं। मै उन खेतों में जाना चाहती थी जिनमें दिन-रात कृषक वर्ग श्रम करने में संलग्न रहते हैं तथा दिन के तपते प्रखर सूर्य के नीचे खेतों को जोतते और खींचते हैं। मैं उन फूलों से लदी क्यारियों में स्वतन्त्र भ्रमण करना चाहती थी, जिन्हें तुम्हारे राजकुल में महास्त्रज वनाने के उद्देश्य से वड़ी कठिनाई से मालाकार लोग सींचने में संलग्न रहते हैं। मुझे बाहर से आने वाली पुष्पलावियों से उन लोगों के जीवन के विषय में कुछ-कुछ मालूम हुआ था। जब मैंने कुछ लोगों से बाहर के पीड़ित क्षुधार्त जन-जीवन की अनेक घटनाएँ सुनीं तो मेरे मन में महाराजाधिराज की उन तनी हुई भौंहों का कुछ-कुछ अर्थ-बोध हुआ था। तब सम्पूर्ण तन्त्र मुझे एक भयावह नाटकीय प्रपंच लगा था।

मुझे याद है, उस अधेड़ महिला की, जो अपने घायल बालक को गोद में लिए तुम्हारे राजकुमार पर उज्जयिनी के सम्भ्रान्त नागरिकों द्वारा की गयी लाजवर्षा के बाद एक-एक करके चुनने में संलग्न हो गयी थी। क्या तुम्हारे पति महाराजधिराज द्वारा प्रशासित राज्य में वैसे भी लोग विद्यमान हैं, जो भूख और रोग की पीड़ा तथा नाना प्रकार के अभावों का जीवन जी रहे हैं ?किन्तु यह सब कुछ मेरा अन्तर्द्वन्द्व बन कर रह गया था। मैं तुम्हारे राजकुल की एक अग बन कर रहने के लिये बाध्य थी। मेरे सामने अभाव का जीवन नहीं था, किन्तु मैं अपने जीवन में जिस अभाव से जूझती रहीं हूँ उसकी तुम एक नारी होकर, मेरी माँ होकर कल्पना नहीं कर सकीं, इससे बढ़ कर मेरा दुर्भाग्य क्या हो सकता था !

शायद तुमने किसी ऐसे अभागे प्राणी की कल्पना नहीं की होगी जो नदी के तट पर रह कर भी प्यासा रह जाता है, और अपनी प्यास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की तीव्र पीड़ा झेलते हुए तड़प-तड़प कर अपना अन्त कर लेता है। मेरी शायद कुछ वैसे ही स्थिति रही है। मैं अपनी उस दयनीयता को व्यक्त नहीं कर सकती थी। क्योंकि मुझे डर था कि उसे सुनकर अनुभव करने की किसी में क्षमता न थी, न तो तुममें और न तुम्हारे लाड़ले राजकुमार में। यही कारण था कि मैं चुप रही।

जब तुम्हारे लाड़ले कुमार का एक अघटित घटनावश हेमकूट की गन्धर्व-राजकन्या कादम्बरी से परिचय हुआ और वही परिचय कुछ दिनों में प्रणय-सम्बन्ध में परिणत हो गया तब से मेरे जीवन में एक दूसरे प्रकार का परिवर्तन हुआ। वह कोई बाह्य नहीं, प्रत्युत सम्पूर्णतया आन्तरिक था। तब मुझे अपनी सही स्थिति का भान हुआ था। फिर भी मैं स्थिर रही और अपने कर्त्तव्य के प्रति किसी प्रकार के प्रमाद से ग्रस्त न हुई। कुमार मुझे अपने साथ हेमकूट ले गए और अपनी प्रेयसी से मेरा परिचय कराया। मैंने जब उनकी प्रेयसी को देखा तब अनुभव किया कि उनका आकर्षण किसी प्रकार अनुपयुक्त नहीं। गन्धर्व-राजकन्या के सुकुमार हृदय और अपरूप लावण्य से उनका तथा उनके दिव्य सौन्दर्य पर उस राजकन्या का लुब्ध हो जाना स्वाभाविक ही था। किन्तु जब मैंने अपनी स्थिति पर चिन्तन किया तो मुझे लगा, मेरे आस-पास एक पतझर का वातावरण उत्पन्न हो गया है। वह पतझर, जिसमें एक भयावह उदासी छा जाती है, एक धूल का वितान सा तन जाता है।

मुझे जब उस प्रणय-व्यापार में एक-दूसरे ने विश्वासपूर्वक माध्यम बनाया तब मेरी आन्तरिक व्यथा और तीव्र हो चुकी थी किन्तु उसे मैंने किसी को लक्षित होने न दिया। तुमने भी तो मुझ पर अत्यन्त विश्वास करके अपने कुमार की छायानुगत परिचारिका बनाया था? जब कभी अपनी तीव्र आन्तरिक पीड़ा से ग्रस्त होकर मैंने अनुभव किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि तुम्हारे कुमार ही एकमात्र मेरी उस दयनीयता के कारण हैं, तब अचानक मेरे दुर्बल मन ने कुछ अन्यथा विचार भी कर लिया था, किन्तु कुछ ही देर बाद तुम्हारे स्नेह ने और तुम्हारे कुमार के असामान्य सरल हृदय ने मुझे रोक दिया और देर तक मैं अपने उस विचार के लिए अपने को कोसती रही।

कुमार चन्द्रापीड़ और गन्धर्व राजकन्या कादम्बरी, दोनों ने ही एकान्त में अपनी-अपनी विरह वेदना की मुझसे विस्तृत चर्चा की। किन्तु किसी ने मेरी अन्तर्व्यथा लक्षित नहीं की और अगर लक्षित भी की हो तो किसी ने मुझसे उसके सम्बन्ध में प्रश्न करना उचित नहीं समझा। एक क्षुद्र परिचारिका के सुख-दुःख की चिन्ता कब किसे हुई है ? कभी उनमें से किसी ने व्यवहार को ध्यान में रख कर पूछा भी तो इतना ही मात्र कि मैंने ठीक से स्नान तो कर लिया, भोजन तो मेरा हो गया, आदि। इतने बड़े प्रतापी राजकुमार के साथ रह कर और गन्धर्वों की राजधानी हेमकूट पर पहुँचकर भी मुझे स्नान और भोजन का कष्ट होगा, क्या ऐसी कल्पना भी की जा सकती थी ? मैंने तुम्हारे राजकुल में ही अपना जीवन आरम्भ किया है, जहाँ कृत्रिम व्यवहार को सभ्यता माना जाता है, जहाँ बाहरी चाकचिक्य को सौन्दर्य का नाम दिया जाता है। मैं बाहर के सौन्दर्य और भीतर के स्नेह की कुछ-कुछ सही पहचान तुम्हारे सान्निध्य में ही रहने के कारण कर सकी हूँ। तुम, जाने क्यों उस सम्पूर्ण कृत्रिम वातावरण में एक मात्र सहज और स्निग्ध लगी थीं। मैंने अपने दुर्भाग्य के कारण अपने पिता को अवश्य खो दिया था, किन्तु तुम्हारे रूप में मैंने अपनी मां का प्रतिबिम्ब हमेशा देखा और तुम्हें वही समझा। शायद वह मेरी ही कमी थी जिससे मैं अपने पिता को महाराजाधिराज में न पा सकी। उनकी तनी हुई भौंहें और उनके हाथ में पड़े कठोर खड्ग ने उस प्रकार के मेरे कोमल हृदय में भाव को उत्पन्न होने ही न दिया, और आजीवन मैं अपने पिता के लिए तरसती रही। यदि वे मिलते तो मैं अवश्य उन्हें अपनी उस दयनीयता से अवगत कराती। उनके गले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से लिपट जाती और देर तक रोती। निश्चय ही तुमने मातृत्व का बोझ उठाया था, फिर भी मैं तुमसे अपनी वेदना नहीं कह सकी थी। मेरा मौन-दुर्ग तुम्हारे सामने भी भंग न हो पाया।

आज समय ने एक विचित्र सी करवट ली है। अच्छोद सरोवर के तट पर अपने मित्र वैशम्पायन के खो जाने के कष्ट से कुमार का हृदय फट गया है। उनका शरीर पड़ा हुआ है। आकाशवाणी के अनुसार वे पुनः जीवित हो उठेंगे। देवी महाश्वेता और देवी कादम्बरी उपस्थित हैं। महाराजाधिराज के साथ आप भी यहाँ आयेंगी और अपने प्रिय कुमार के पुनरुज्जीवित होने के अवसर की प्रतीक्षा करेंगी। उनके जीवित होते ही देवी कादम्बरी के साथ बड़े धूम-धाम से उनका विवाहोत्सव सम्पन्न होगा। काश, मैं भी उसमें सम्मिलित हो पाती! किन्तु अब मेरे लिए शरीर-धारण का कष्ट असह्य है। अपने लिए संसार एक उजाड़ बस्ती के रूप में बदल दिया गया है। मैं अपने दुर्वह शरीर को, शत-शत खण्डों में विभाजित होकर विकीर्ण अपने हृदय को कब तक, और किस लिए ढोती फिरूँ! मुझे जो तुम्हारी ओर से कुमार की सेवा में समर्पित होने का आदेश मिला था, मैं अपनी क्षमता भर उसे अपना कर्तव्य समझ कर निभाया। वैसे मुझसे जाने-अनजाने अनेक त्रुटियाँ हुई होंगी। उनके लिए क्षमा करना। माँ का हृदय बड़ा विशाल होता है। उसमें आकाश का फैलाव होता है और महासमुद्र की गहराई होती है। मेरे मन में वह साध रह ही गयी जो तुम्हारे सामने तुम्हारी "बहू" बनकर उपस्थित होती। मुझ अनाथ राजकन्या को वह सौभाग्य कैसे मिलता!

इस संसार से विदा होने के पूर्व तुमसे मिलना चाहती थी, केवल तुमसे! किन्तु अब अपने को रोक पाना मेरे लिए सम्भव नहीं। मेरी पीड़ा असह्य हो उठी है। तुम्हारे लाड़ले कुमार के प्रति अपने मूक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रणय की जो मेरे योग्य परिणति हो सकती है उसे ही पूरी करने जा रही हूँ ! क्या अच्छा होता, यदि मैं राजकन्या न होती, सुन्दर न होती, मेरा हृदय इस प्रकार किसी गुणशाली के प्रति द्रवित हो जाने वाला न होता। किन्तु वही हुआ, जो भवितव्य था, जो उस कृपाकठोर नियन्ता को इष्ट था। हो सकता है, कभी अगले किन्हीं जन्मों में उन्हें पा सकूं और अपने को सार्थक कर सकूं। मैंने अपने छोटे से जीवन में कोई साधना, तपस्या अथवा किसी प्रकार की पूजा नहीं की, किन्तु तुम्हारे कुमार की सेवा के रूप में जो कुछ किया वही मेरा सर्वस्व था। मुझे लगा है, इस जन्म में वह मेरा सर्वस्व मुझसे छिन गया है। मैं किसी व्यक्ति को दोष नहीं देती। देवी कादम्बरी के प्रति मेरे मन में अकारण आदर का भाव रहा है, और है। कुमार चन्द्रापीड़ जैसे योग्य वर के लाभ का सौभाग्य उनके लिए उचित ही है। मैंने वस्तुतः जो भी अपनी सीमा से ऊपर उठकर सोचा वह मेरे पक्ष में पागलपन या भ्रम के अतिरिक्त कुछ न था। किन्तु क्या तुम भी यही सोचतीं ? मेरी माँ होकर तुम भी यही सोचतीं ? मेरे मन में उदित यह प्रश्न-कणिका मेरे साथ ही असमाहित चली जायेगी। तुम्हें जब मैं याद आऊँ और यहाँ उपस्थित लोगों से मेरे अच्छोद-सरोवर के अर्पित हो जाने की घटना विदित हो तब एक बार इस ओर अवश्य आना। किन्तु मेरी प्रार्थना है कि यहाँ रोना नहीं, बिल्कुल मत रोना……मेरी अच्छी माँ !

तुम्हारी स्नेहलालिता
पत्रलेखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैशम्पायन के नाम

प्रिय बन्धु,

तुम्हारे विरह के तीव्र संवेग से तुम्हारे मित्र का हृदय विदीर्ण हो गया है। सम्भव है, तुम दोनों पुनः मिल जाओ तथा अपनी-अपनी प्रतीक्षारत प्रियतमाओं को उपलब्ध करके जीवन के सुख प्राप्त करो। मैं अपने इस जीवन से विरत हो जाने का निर्णय ले चुकी हूँ। वह इस आशा में नहीं, कि इस प्रकार मेरे दुःख का अन्त होगा। मृत्यु समस्याओं का समाधान होती है, ऐसा मैं नही मानती। वस्तुतः वह क्या होती है, यह रहस्य मनुष्य के लिये रहस्य बना रहेगा। मृत्यु केवल शरीर का अन्त मात्र नहीं, वह कुछ आगे की प्रक्रिया है। हम अनुमान से उसके सम्बन्ध में नाना कल्पनाएँ करते हैं, किन्तु वह अब तक किसी की पकड़ में नहीं आ सकी है, यह अनुभव करते हुए भी मैं उसे आत्मसात् करने के लिये यहाँ, इस सरोवर के एकान्त तट पर आयी हूँ।

मैंने अपने जीवन में अपने बाहर तो प्रकाश की चकाचौंध देखी है किन्तु जब-जब अपने भीतर को टटोला है वहां मुझे एक गहन तमस्काण्ड ही नजर आया है। हो सकता है, मृत्यु उस तमस्काण्ड से भी अधिक गहरे सूचिभेद्य अन्धकार में मुझे ढकेल दे, फिर भी मैं अपनी समग्र चेतना के साथ उसे स्वीकार करूँगी।

अस्तु, मुझे यहाँ अपने विषय में कुछ विशेष कहना नहीं है। मेरा जो होना था वह हो चुका। मेरा जो शेष भवितव्य है वह कुछ ही समय के अन्तराल में घटित हो जायेगा। मुझे आज अपने जीवन के अत्यल्प

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवशिष्ट क्षण में तुम बार-बार याद आ रहे हो। उसका एक मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि तुम जिस प्रकार कुमार के अभिन्न-हृदय मित्र होने के कारण छाया की भाँति उनके अनुगत थे, उसी प्रकार अपने समग्र अस्तित्व से उनके सर्मपित मैं भी उनकी एक छाया के रूप में अनुगत थी। हम दोनों में केवल इतना अन्तर अवश्य था कि तुम उनके समान स्तर के मित्र थे और मैं एक परिच'रिका थी। कुमार के लिये तुम एकमात्र तुम थे और मुझ जैसी उनकी सेवा में सर्मपित शताधिक परिचारिकाएँ थीं। यह कुमार की ही सहृदयता थी, जो मुझे उन्होंने अपनी सामान्य परिचारिकाओं की सीमा से कुछ ऊपर स्थान दिया था। हो सकता है, उनके द्वारा प्राप्त अपने प्रति उनके विशेष अनुग्रह ने मुझे इतना वशीभूत कर डाला कि मैंने अपने समग्र अस्तित्व से ही उन पर निछावर होने का मन ही मन संकल्प कर लिया था। मैं अन्ततः एक दुर्बल नारी सिद्ध हुई। अपनी क्षुद्रता में कुमार के महाकाश जैसे व्यक्तित्व को समेट पाने की मेरी आकांक्षा निष्फल सिद्ध हुई। मैं जन्म से एक राजकन्या अवश्य थी, और कुमार की स्निग्ध माता ने अपना संरक्षण देकर और भी मुझे उल्लसित कर दिया था। सम्भव है कुछ इन्हीं कारणों से मैं उन्हें भीतर से चाहने लगी थी, किन्तु मेरी स्थिति तुमसे भी अविदित ही रही। जब से हेमकूट की गन्धर्व राजकन्या के साथ कुमार का प्रणय-प्रसंग घटित हुआ तब से मैंने सम्पूर्णतया उनके प्रति अपने उस आकर्षण को, अपने उस क्षुद्र अधिकार भाव को मौन के दृढ़ दुर्ग में डाल दिया। मेरा उनके प्रति वही आकर्षण क्रमशः मेरे हृदय की एक गम्भीर पीड़ा के रूप में परिणत होता गया और मेरे पास उसकी अनुभूति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह गया। सम्भव है, तुम विश्वास न करो, मेरा समग्र अस्तित्व ही पीड़ा बन चुका है। तुम्हारे कुमार की 'पाखी' का एक और नाम पीड़ा है।

तुम्हें प्रथम बार तब मैंने देखा था जब तुम कुमार के साथ विद्या-भ्यास समाप्त करके विद्या-मन्दिर से राजकुल आये थे। प्रासाद पर बैठी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने दूर से तुम्हें लक्षित किया था। उस भीड़ में तुम दोनों ही अपनी दीप्त शोभा से उल्लसित थे। जब मैं कुमार की "ताम्बूलकरंकवाहिनी" हुई तब तुम्हें निकट से परखने का अवसर मिला। तुम दोनों की जोड़ी देखकर नर-नारायण की स्मृति होती। वस्तुत: तुम दोनों के शरीर दो थे, किन्तु हृदय एक था। एक-दूसरे के बिना दोनों जैसे रह नहीं सकते थे।

तुम्हारे स्वभाव में एक मृदुता थी। तुमने अपनी बात को मनाने के लिये कभी हठ नहीं किया। कुमार में कभी-कभी क्षत्रियोचित साहस एक सीमा तक प्रकट हो जाता था। उनकी महाप्राणता उनके शरीर से ही नहीं, प्रत्युत अदभुत साहस-शक्ति से भी प्रकट होती रहती थी। सुनती थी, कुमार बचपन में हाथियों के बच्चों के कान दबोच लेते तो वे एक कदम भी उठा न पाते थे, खड्ग से ताल-वृक्ष को एक प्रहार में काट कर ढेर कर देते, बाण से चट्टान में छेद कर देते और दस मल्ल भी जिसे न उठा सकें, ऐसे लोहे के मुद्गर से व्यायाम करते। किन्तु तुमने इन सब में उनका साथ न दिया। निश्चय ही तुम्हारी प्रकृति ललित कलाओं के अभ्यास के अनुरूप थी। यदि मित्रमण्डली में विनोद के लिये कुमार वीणा लेकर बैठते तो तुम मुरज बजाकर उनका साथ देते। मुझे स्मरण है एक बार अपनी-अपनी कल्पना के अनुरूप तुम दोनों ने अपने अभिमत सौंदर्य से सम्पन्न किसी सुन्दरी का चित्र निर्माण किया तो निश्चय ही तुम दोनों की सौंदर्य के प्रति उदात्त सूझ का मुझे कुछ संकेत मिला था। जब बड़े सहज भाव से तुम दोनों ने ही निर्णय के लिये अपने-अपने चित्र मुझे दिखाये और मेरी ओर जिज्ञासा-भरी दृष्टि से देखने लगे तो मैं अपना निर्णय न दे पायी कि इसमें किसकी कला अधिक प्रभावोत्पादक है। जहाँ कुमार द्वारा निर्मित चित्र की नायिका अपने अपूर्व लावण्य से गर्वित और नाना दिव्य आभूषणों से सुसज्जित लगी वहाँ तुम्हारे चित्र की नायिका एक मुग्धा, अपने सहज लावण्य भार से सिमटी और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निरलंकृत होने पर भी अपने विलक्षण शरीर-मार्दव से शोभित प्रतीत हुई। उस समय कुछ-कुछ तुम दोनों के स्वभावगत दृष्टिकोण-भेद का भान मुझे हो सका था। उन दोनों ही चित्रों में तब अपने को ढूँढ़ने की प्रवृत्ति मेरे मन में अचानक उत्पन्न हो गयी थी, किन्तु जब मैंने अपने को उनमें नहीं पाया तो एक प्रकार से भीतर ही भीतर कुछ खिन्न हुई थी। उन दिनों मैं अपने उस खेद के मूल कारण को कुछ भी समझ नहीं सकी थी। निश्चय ही तुम दोनों ही मेरी आकृति तथा मेरे कला ज्ञान के प्रशंसक रहे, तथापि मेरे मन पर उस प्रशस्ति का एक हल्का सा प्रभाव मात्र होकर रह जाता। मैंने उसे गम्भीरता से नहीं लिया, क्योंकि मैं उन दिनों अपनी सीमाओं के प्रति अधिक जागरूक थी।

युवराज पद पर अभिषिक्त होने के बाद कुमार ने जो दिग्विजय यात्रा आरम्भ की थी, वह मेरी दृष्टि में उनके द्वारा अपनी कुल-परम्परा से प्राप्त अपने शौर्य एवं पराक्रम का प्रदर्शन मात्र था। क्योंकि जब उनके पिता महाराजाधिराज जिन पर विजय प्राप्त कर चुके थे उन पर अपनी ओर से पुनः विजय प्राप्त करने का कुछ भी अर्थ उसके अतिरिक्त मैं नहीं समझ पाती थी। उस दिग्विजय यात्रा में जनजीवन की भयंकर क्षति और लहराती कृषि का विनाश कैसे ठीक लगता! कुमार से इस सम्बन्ध में कुछ कहना मेरे लिये कैसे सम्भव था। मैं भीतर ही भीतर व्याकुल हो रही थी। किन्तु इसी क्रम में मैंने तुम्हें उस यात्रा के कुछ विपरीत किन्तु मृदु ढंग से अपने विचार व्यक्त करते हुए सुना, तो मैं भीतर से गद्गद हो उठी थी। किन्तु कुमार का उस समय तुम्हारी बात सुनकर हँस देना और आगे बढ़ जाना मुझे कुछ नहीं भाया। उनकी यह निषेध की भाषा उनकी उत्तम प्रकृति की परिचायक अवश्य थी, किन्तु तुम्हारा वह प्रस्ताव इतना उन्हें अमान्य होगा, ऐसी कल्पना मैं नहीं कर सकती थी।

कुमार की उस सम्पूर्ण दिग्विजय यात्रा में तुम उनके साथ थे। मैं अपनी सीमा में ही उनकी सेवा कर पाती थी। किन्तु तुम उन्हें शत्रुओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के साथ मुकाबले में निरन्तर साथ होते। सेनापतियों को उचित निर्देश देना और स्कन्धावार के उचित स्थान का निर्णय अधिकतर तुम ही लेते थे। मैं तुम्हारे कारण कुमार को उसी प्रकार निश्चिन्त पाती थी, जैसे इन्द्र अपने अनुज कृष्ण पर अपनी सम्पूर्ण चिन्ता डालकर निश्चिंत होकर शासन करते हैं।

तुम जैसे एक सच्चे मित्र को प्राप्त करने वाले कुमार के भाग्य की मन ही मन प्रशंसा किया करती।

उस दिन की एक घटना मैं नहीं भूल सकती, जब तुम दोनों पासों से खेल रहे थे और मुझे भी साथ बिठा लिया था। अन्तिम विजय मेरे हाथ आयी, जिसमें यह वचन रखा गया था कि कुमार जब भी किसी राजकुमारी का चयन करेंगे तब मेरा निर्णय अवश्य लेंगे। किन्तु तुम जानते हो, कुमार ने गन्धर्व राजकन्या कादम्बरी से प्रणय-प्रसंग स्थापित किया तब उन्होंने मुझसे पूछा ? यह भिन्न बात है कि वहाँ मैं तब उपस्थित ही न थी। जब कुमार ने मुझे हेमकूट की उस दिव्य सुन्दरी को दिखाया तो उनके उस चयन से प्रसन्नता ही हुई, पर जाने कुछ भीतर से मैं टूट गयी और धीरे-धीरे टूटने की मेरी वह अनुभूति तीव्रतर होती गयी। कुमार को इसका कुछ भी संकेत देना मैंने उचित न समझा और न देवी कादम्बरी को भी इसकी जानकारी हुई। मैं यदि ऐसा कुछ भी करती तब मेरी इच्छा मात्र विघ्नित ही नहीं होती, सम्पूर्णतया विफल हो जाती। मैं तब कुमार और देवी कादम्बरी के बीच प्रणय के नाटकीय व्यापार की सूत्रधार थी। वह वस्तुतः मेरे लिये एक विकट परीक्षा का अवसर था, किन्तु जब लगा कि वह नाटक अवशेष है और अब उसमें किसी सूत्रधार की अपेक्षा नहीं तब मैंने कुछ भिन्न ही निर्णय लिया। तुम्हारे विरह से कुमार की जो दशा हुई उससे कम मेरी दयनीयता कुमार के अभाव में नहीं है। फिर भी मैं अपने अस्तित्व की पीड़ा अब नहीं सह सकूंगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्नर-युगल की घटना के बाद कुमार का उस प्रकार लुप्त हो जाना हमारे स्कन्धवार के लिये एक अघटित घटना थी। हम दोनों ही उद्विग्न हो उठे थे। पता लगाना और प्रतीक्षा करना ही हमारे लिये तत्काल सम्भव था। हम उस दु:ख की वेला में एक दूसरे को सान्त्वना देकर यापन कर रहे थे। मैंने अनुभव किया कि तुम भीतर से कुमार के लिये कितने व्याकुल हो उठे हो। वैसे मैं भीं कुछ कम व्याकुल न थी। एक दिन तुमने कुछ निराश होते हुए मुझसे पूछा 'पाखी, क्या सचमुच कुमार नहीं लौटेंगे! तब मैंने तुम्हारे निराश मन की सान्त्वना के लिए कुछ भूर्जपत्रों को एकत्र किया और उन पर दोनों प्रकार की स्थितियाँ लिखीं और उन्हें मोड़ कर उनमें से किसी एक को उठा लेने के लिये तुमसे आग्रह किया। तुमने उसी पत्रखण्ड को उठाया, जिसमें लिखा था "कुमार लौटेंगे", इससे तुम कितने प्रसन्न हो उठे थे! जैसे तुमने कुमार को पा ही लिया हो। किन्तु जव मैंने तुमसे अलग होकर उन पत्र-खण्डों में से एक को उठाया तव निकला, "नहीं लौटेंगे।" बाद में कुमार हेमकूट से लौटे, तव मैंने अपने द्वारा निकाले हुए पत्र-खण्ड पर लिखे 'नहीं लौटेंगे' का अर्थ लगाया कि मेरे लिये उनके लौटने का अब कोई विशेष अर्थ नहीं रह गया था। हेमकूट के निवास काल में कुमार में हुए परिवर्तन से कुछ ऐसा लगा था कि वे अपनी "पाखी" के नहीं रह गये थे। कुमार के उस परिवर्तित रूप के लिये मेरे मन में सम्भावना का उदय कभी अवश्य हुआ था। किन्तु मैं इतना शीघ्र कुछ घटित हो जायेगा, उसके लिये तैयार न थी।

तुमने भी सारी घटनाओं को कुमार से सुना और आश्चर्य से भर कर सुना। मैं उस घटना क्रम के साथ ही साथ अव्यक्त रूप से भीतर ही भीतर विकीर्ण होती जा रही थी। मैंने लक्षित किया कि सिद्धायतन में महाश्वेता के मिलन की घटना से तुम अत्यधिक प्रभावित हुए थे। आगे चलकर, तुम्हारा उस प्रकार अकेले में सिद्धायतन की ओर जाना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और उस दृष्ट-पूर्व जैसे प्रतीत हो रहे वातावरण से प्रभावित होना और देवी महाश्वेता के शाप से ग्रस्त होकर शुक योनि में चले जाना सब कुछ मुझे अर्थ-पूर्ण लगने लगा है। सम्भव है, देवी महाश्वेता जिस मुनि कुमार पुण्डरीक की प्रतीक्षा में तपस्विनी का कठोर जीवन झेल रही हैं वह अपने पूर्व जन्म में तुम ही थे। यह सब भविष्य बतायेगा किन्तु उस भविष्य को देखने के लिये 'पाखी' जीवित रहे यह सम्भव नहीं होगा। क्योंकि अब उसके लिये इस जीवन में कोई भविष्य शेष नहीं रह गया है। उसका नाटक अपने "भरत-वाक्य" पर पहुँचने के पूर्व ही समाप्त हो चुका है। उसकी पूजा अधूरी रह गयी है। उसका उद्धार कब होगा, उसकी पूजा कब पूरी होगी, वह नहीं जानती, बिलकुल नहीं जानती।

जिस प्रकार मेरे प्रति प्रत्येक व्यवहार में कुमार का तटस्थभाव मुझे भीतर से उद्विग्न करता, उसी प्रकार तुम्हारे व्यवहार से वह मुझे जाने क्यों तुम्हारे प्रति आश्वस्त कर देता। कुमार ने कभी मेरे साथ "परिचारिका" जैसा व्यवहार नहीं किया। फिर भी मैं उनके प्रति अपनी सीमा से ऊपर उठने का साहस नहीं कर पाती थी। किन्तु उनके साथ तुम होते तब कोई न कोई ऐसा बहाना तुम दोनों ही अवश्य निकालते, जिससे मैं तुम दोनों के निकट और भी खुल सकूँ। दिग्विजय-यात्रा के व्याकीर्ण और अस्त-व्यस्त जीवन में भी तुम दोनों का परस्पर उन्मुक्त हास-परिहास मुझे उल्लसित करता, किन्तु कुमार की भाँति तुम भी मेरे भीतरी दुखों से परिचित नहीं हो सके! तुम प्रकृत्या सुकुमार थे। तुम्हें फूलों का मुर्झाना तब असह्य हो जाता था। किन्तु मैं तुम्हारे आस-पास रहकर कितनी सीमा तक मुर्झा चुकी थी, उसका तुम ख्याल नहीं कर सके। क्या तुम भी राजकुल की सीमाओं के कृत्रिम व्यवहार को ही महत्व दिया करते थे? कुमार और तुम एक डंठल में खिले पाटल के दो फूलों की भाँति लगते थे और मैं वहीं एक पत्ते की तरह पीली पड़ती जा रही थी!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हेमकूट के व्यस्त दिनों में लगभग तुम्हारा सान्निध्य छूट गया था। किन्तु तुम्हारी स्निग्ध स्मृतियाँ बार-बार मुझे अपने एकान्त क्षणों में उद्वेलित करतीं।

यदि मेरा अनुमान सत्य है तो निकट भविष्य में देवी महाश्वेता के तप:परिशुद्ध प्रणय को तुम मुनि कुमार पुण्डरीक के रूप में प्राप्त करके धन्य होगे। निश्चय ही मेरी दृष्टि में देवी महाश्वेता का स्थान आज तक मेरी सुपरिचित महिलाओं में सबसे ऊँचा है। उन्होंने प्रतीक्षा की अग्नि में जल कर अपने प्रणय को निखार पर ला दिया है। मेरे जीवन में प्रणय का प्रवेश, विना किसी पूर्व योजना के बिलकुल अज्ञात रूप में हो गया। वास्तव में प्रणय के साथ किसी पूर्व योजना की बात नहीं बनती। वह कब हो जाता है इसका भी अनुभव बाद में होता है। कभी-कभी उसे जीने के लिये जीवन को दाँव पर रख देना होता है, मैं इतनी ऊंचाई तक प्रणय को जी सकूंगी, ऐसी मेरी क्षमता नहीं। फिर भी देवी महाश्वेता का आशीर्वाद है जो मैं आज इस आन्तरिक दयनीयता की सीमा तक पहुंच कर भी अपने लक्ष्य से विरत हो जाने के पक्ष में नहीं हूँ।

निश्चय ही अब भी मैं चाहूँ तो कुमार और तुम्हारे सान्निध्य में रहकर अपनी परिचारिका वृत्ति मात्र से भौतिक सुख-सौविध्य की चरम ऊँचाई तक पहुँच सकती हूँ। किन्तु मैंने उस ओर कभी नहीं ताका। जीवन मेरी दृष्टि में उतने मात्र के लिये यापनीय नहीं। वह अपने प्रिय के प्रति समर्पित हो जाने में सार्थक होता है। किन्तु दुर्भाग्य है कि मेरा वह समर्पण अधूरा है। मैं अपने इस जीवन के इन अन्तिम क्षणों में भी अपने इस अधूरे समर्पण को लेकर व्याकीर्ण हो रही हूँ।

हो सकता है, मेरी स्मृति तुम्हें और देवी महाश्वेता को कभी इस ओर खींच लाये। यदि सम्भव हो तो उस समय देवी से अच्छोद के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस तट पर अपने चरण धो लेने के लिये आग्रह करना। सम्भव है, मेरे अस्तित्व के कुछ कण उस समय उन्हें छू लेने के लिये दौड़ पड़ें। …अन्त में मेरा एक छोटा सा सन्देश है, तुम्हें लिखित इस पत्र के माध्यम से उसे बहुत लोगों तक पहुँचा देना चाहती हूँ।

"हो सकता है, कोई पत्रलेखा कहीं आपके आस-पास आपकी सहानुभूति के एक कण की मौन प्रतीक्षा कर रही हो। आप कृपया अपने व्यस्त समय से कुछ अंश निकालें और उस पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। वह आपकी बहुत बड़ी भूल होगी, अगर आपने उसे अपनी सहानुभूति "भिक्षा" समझ कर दान में दी। वस्तुतः आपकी सहानुभूति, उसका जन्मसिद्ध अधिकार है……और आपने विलम्ब कर दिया तो सम्भव है उसकी चिर प्रतीक्षा का सेतु टूट जाय और उसके चरण पुनः किसी अच्छोद-सरोवर के तट की ओर चल पड़ने के लिए बाध्य हो जाँय।"

तुम्हारी अनुगता
पत्रलेखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाश्वेता के नाम

महीयसि देवि,

तुम्हारे तपःपूत व्यक्तित्व के निकट सम्पर्क में आने का मुझे बहुत ही कम समय मिला। फिर भी तुम्हारे जीवन का और सहानुभूतियों का मुझ पर अधिक प्रभाव पड़ा है। तुम्हारे प्रति मेरे मन में एक अटूट आत्मीयता का भाव उत्पन्न हो चुका है। मैं अच्छोद के जिस तट पर हूं उससे कुछ ही दूरी पर तुम हो, किन्तु मैं अपने जीवन के इस अन्तिम क्षण में जो तुम्हारे सामने कुछ न कह सकी, उसे आज इस पत्र के माध्यम से निवेदन करके अपना एक कर्त्तव्य पूरा करने का प्रयास करूँगी। वैसे यदि मेरा कर्तव्य-निर्वांह का यह प्रयास तुम्हारे प्रति मेरे मन में उत्पन्न श्रद्धा की गरिमा को किंचिन्मात्र भी अभिव्यक्ति दे सका तो उसे सफल मानूँगी।

यह वही स्थल है, जहाँ इन्द्रायुध पर आरूढ़ कुमार चन्द्रापीड़ किन्नर-युगल की घटना में भटककर आ निकले थे और इस पवित्र सरोवर के जल से आचमन करके कुछ क्षण विश्राम किया था। विश्राम के उन्हीं क्षणों में उन्होंने वीणा के झंकार से मिली किसी अमानुष कण्ठ से निकली गीत की ध्वनि सुनी थी। वे उत्कण्ठित होकर इन्द्रायुध को ले उस ध्वनि के उद्‌गम स्थल की ओर बढ़े थे और नाना वृक्षों से परिवेष्टित एक "सिद्धायतन" उन्हें दिखायी पड़ा था, जहां भगवान् शिव की चतुर्मुखी प्रतिमा के निकट बैठी तुम वीणा वजा रही थीं और साथ ही कोई मधुर गीत गुनगुना रही थीं। तुम्हारे उस दिव्य रूप का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विस्तृत वर्णन कुमार के मुख से सुन चुकी हूं। वस्तुतः विधाता की सृष्टि में तुम धवलिमा की पराकाष्ठा हो। इस कारण तुम्हारा नाम 'महाश्वेता' अपने आप में कितना सार्थक है ! बाहर और भीतर, तुम्हारे अस्तित्व का प्रत्येक कण उसी एक धवलिम चिन्मय आभा से उद्दीप्त है। तुम जहाँ भी चली जाओ, जहाँ भी आसन जमा दो, तुम्हारी देहकान्ति से उस स्थान का प्रत्येक भाग धवलित हो जाता है। वह तुम्हारी उद्दीप्त तपोराशि ही है जो निरन्तर धवल आभा के रूप में तुम्हारी शरीरयष्टि से छिटकती रहती है। विधाता की सृष्टि में जितने धवल पदार्थ हैं उन्हें कल्पना में लाकर तुम्हारी उस छवि का सही चित्र कोई महाकवि ही शब्दों की सीमा में बाँध सकता है अथवा कोई महान् चित्रकार ही तुम्हारे उस अपरूप लावण्य को तूलिका से अंकित कर सकता है। मैं न तो कोई कवि हूं और न चित्रकार, बस हूँ, एक भग्न हृदय नारी, जिसने जीवन में तुम्हारा सान्निध्य पाकर भी अपने को तुम्हारे धवलिमामय अस्तित्व में निक्षिप्त न किया। निश्चय ही तुमने उसे अपने आलिंगन में बांध लिया था, उसकी आँखों से बह रहे अश्रुजल को अपने आंचल के अग्रभाग से पोंछा था। तब भी वह अपने भाग्यहीन अस्तित्व को लेकर विकीर्ण होती रही। किन्तु थोड़े समय में उसे तुमने जो कुछ दिया, उसके लिये वह जन्म-जन्मान्तर तक उऋण न होगी।

प्रणय भौतिकता की सीमाओं से पार एक परिशुद्ध तपस्या है, मैं तुम्हें देखकर ही ऐसा कुछ-कुछ समझ सकी थी। मुझे तब अपनी सीमा कितनी तुच्छ एवं सामान्य लगी थी ! किन्तु तुमने मेरी वह हीन भावना लख ली थी और कहा था, "पत्रलेखे, तू मानवी है। मानव को अपनी सीमा में ही रहकर तप करना चाहिए और तू भी एक तपस्विनी है। तेरी प्रतीक्षा भी अपनी सीमा में एक तपस्या बनकर निखरेगी। किन्तु तू तब तक अपने को सम्भवतः न सम्हाल सके। तुमने ठीक ही कहा था, देवि, मैं अपने को न सम्हाल सकी। मैं ठीक ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"अबला" निकली। किन्तु इस अवस्था में भी मेरी प्रतीक्षा निःशेष नहीं है। मैं अपने आगे के जन्मों में उस अग्नि के अर्पित रहूँगी। निश्चय ही इस जन्म में मैं टूट गयी हूँ, सर्वथा छिन्न-विच्छिन्न हो चुकी हूँ। तथापि मैं झुकी नहीं हूँ। मानव के स्वभाव में जो एक बहुत बड़ा निष्ठा का गुण होता है वह मुझे भी सहज प्राप्त है और मुझे इस क्षण भी किसी प्रकार की ग्लानि या अवसाद नहीं है। यह नियति की मैं बहुत बड़ी अनुकम्पा मानती हूँ कि तुम जैसी प्रणय की साक्षात् देवी से मेरा परिचय घटित हुआ। वह परिचय, मात्र परिचय न था, वह एक उद्दीप्त प्रणय ज्वाला का एक बुझती हुई ज्वाला से महा-मिलन था। फलतः मैं भीतर से उद्दीप्त हो उठी हूँ और मेरे आभ्यन्तर प्रणय की दीप्ति को अच्छोद सरोवर का सहज शैत्य किंचिन्मात्र भी शिथिल नहीं कर सकेगा।

मुझे स्मरण है, कुमार ने कहा था, तुम उनके स्वागत के लिये उठ कर आश्रम के वृक्षों के नीचे अपना भिक्षा पात्र लेकर चली गयी थीं और उन वृक्षों ने स्वयं फल टपका कर तुम्हारे भिक्षा पात्र को भर दिया था। कुमार ने वह दृश्य देखकर अपने मन में सोचा था—"तप के लिये कुछ भी कठन नहीं है, इससे बढ़कर क्या आश्चर्य होगा कि जड़ पदार्थ भी सचेतन की तरह फल दान द्वारा अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर रहे हैं!" देवि, मैंने भी अपने जीवन के सिद्धायतन में भावनाओं के नाना वृक्ष लगाये थे और उसमें एक मन्दिर का भी निर्माण किया था और तुम जान चुकी हो, कि उस मन्दिर में जिस मूर्ति की मैंने प्रतिष्ठा की थी वह सचेतन मूर्ति कुमार चन्द्रापीड़ स्वयं थे। किन्तु मैंने अनुभव किया कि वह मेरा सिद्धायतन नितान्त निष्फल रहा। उसके वृक्ष कभी पुष्पित एवं फलित न हुए और उसमें प्रतिष्ठित सचेतन कुमार चन्द्रापीड़ अचेतन से भी बढ़कर निकले। उन्होने भूल कर भी मेरी पूजा स्वीकार न की। मेरा भिक्षा पात्र भी सदा-सर्वदा सूना ही रहा। क्या मैं उन भाग्यहीन लोगों में परिगणनीय नहीं हूँ जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फूल को भी छू लें तो वह उनके लिये पत्थर के रूप में परिणत हो जाता है ? कुमार के समान स्निग्ध और कोमल प्रकृति का व्यक्तिइस संसार में कौन हो सकता है ? किन्तु वे भी मेरे लिये एक शिला-खण्ड की भांति भावशून्य और कठोर ही बने रहे, इसे मैं अपना दुर्भाग्य न कहूँ, तो क्या कहूँ ?

तुम्हें उस वय में तपोनिरत देखकर कुमार के मन में कुछ प्रश्न उदित हुए थे। उन्होंने विनय पूर्वक उन्हें तुम्हारे समक्ष प्रकट किया तो तुम कुछ देर गम्भीर हो गयी थीं और धीरे-धीरे गहरी सासें छोड़ते हुए मूक भाव से रुदन करने लगी थीं। उस समय तुम्हारी आँखों से मोटे-मोटे अश्रुकण प्रवाहित हो रहे थे। ठीक मुझे भी देखकर मेरे अन्तरतम की विकीर्णता को तुमने अपनी दिव्य एवं सूक्ष्म दृष्टि से भांप लिया था और एकान्त में मुझसे मेरे विगत एवं प्रवर्तमान जीवन के विषय में पूछ बैठी थीं। किन्तु तुम जानती हो, मैं देर तक नहीं रोई थीं। मेरी आँखों के आँसू जाने कब से सूख चुके थे। तब भी तुमने अपने हृदय की सहज सहानुभूति प्रकट की थी और कहा था—"पत्रलेखे, ऐसा न समझ कि महाश्वेता तेरे दुःख-दर्द से अपरिचित है, बस इतना समझ कि 'उनके' साथ मेरा तादात्म्य स्थापित हो चुका है।" देवि, तुम्हारा इतना ही कहना था कि मैं अपने को सम्हाल न सकी और तुम्हारे अंक में अपना सिर डाल कर रो पड़ी थी। जाने उस समय मेरी आँखों में कहाँ से आँसू छलक पड़े थे। मुझमें उतनी गहराई से पैठ कर भेद देने की क्षमता मात्र तुम्हारी दृष्टि में थी। तब मैंने अनुभव किया था कि तुम्हारे सामने किसी प्रकार अपने अन्तरतम के निगूढ़ रहस्य को अप्रकट नहीं रख सकूँगी। मैंने धीरे-धीरे तुम्हें अपने विगत जीवन और प्रवर्तमान मूक प्रणय के सम्बन्ध में सब कुछ स्पष्ट कर दिया था। तब तुमने बताया था कि गन्धर्वों के जीवन में कितना बाह्य प्रदर्शन है। केवल बाह्य आडम्बर को प्रश्रय देने वाले ये लोग मानवों के मूक प्रणय की गहराई से अपरिचित रह जाते हैं। सम्भवतः तुम्हारे ये उद्गार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवी कादम्बरी को लक्षित कर रहे थे। निश्चय ही तुम्हारे मन में देवी कादम्बरी के प्रति सहज स्नेह का भाव था, किन्तु मैं यह किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकती थी कि देवी का कुमार के प्रति आकर्षण आभ्यन्तर कम और वाह्य अधिक था। देवी कादम्बरी और कुमार चन्द्रापीड़ ने एक दूसरे के अन्तरतम में कुछ ही परिचय के पश्चात् बहुत गहरे प्रवेश पा लिया था। वह प्रवेश प्रणय के सच्चे धरातल पर सम्पन्न हुआ था। हाँ, जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मेरी स्थिति अपनी सीमा से मुझे ऊपर उठने के लिये वाध्य कर चुकी थी। मैंने कभी अनुभव नहीं किया कि कुमार मुझ क्षुद्र परिचाका के प्रति प्रणय की सीमा में कुछ भी आकर्षण अनुभव कर रहे हैं। किन्तु मैं उनके प्रति शनैः शनैः सर्मपित होने लगी थी और अब मेरे समर्पण की तीव्रता प्रणय के रूप में जाग पड़ी। तब मैंने अपनी सीमा में रहकर ही उसे जीने का प्रयास किया। इस प्रयास में मैं कितनी पीड़ा सहन कर चुकी हूँ उसका यहाँ उल्लेख आवश्यक नहीं। मैंने जब कुमार के जीवन में तुम्हारी प्रियसखी को प्रवेश पाते देखा तब मैं अपनी उस पीड़ा को ही अपनी नियति मान कर तटस्थ भाव से उसे झेलने लगी थी।

तुमने कुमार से अपने जन्म की घटना बताते हुए कहा था कि सब लक्षणों से हीन तुम अनेक दुःख झेलने के लिये और अपने माता-पिता को शोकाकुल करने के लिये ही जन्मी थीं। तुम्हारे पिता के और कोई सन्तान न थी, इसलिए उन्होंने पुत्रजन्म से भी बढ़कर तुम्हारा जन्मोत्सव मनाया था और तुम्हारा नाम 'महाश्वेता' रखा था। तुम जान चुकी हो, मैं भी कुलूत देश के अधिपति अपने माता-पिता के एकमात्र सन्तान हूँ। निश्चय ही मेरा भी जन्मोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया गया होगा। किन्तु दैव से मेरा वह सुख-सौविध्य देखा न गया और कुमार के प्रतापी पिता के हाथों मेरे माता-पिता की मृत्यु हुई और राजकन्या मैं अनेक वन्दियों के साथ कुमार के राजकुल में लायी गयी। मैं इतना कह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकती हूँ कि मेरे दुःख देखने से पूर्व ही मेरे माता-पिता इस संसार से सिधार चुके। अपने जीवन में जब-जब मैंने उनको याद किया है, मेरे मन में कुमार के पिता महाराजाधिराज के प्रति एक असहज वेदना भर उठी है। किन्तु ठीक उसी समय उनकी स्निग्ध माता महादेवी के मेरे प्रति स्नेह और दुलार से भरे व्यवहार स्मरण आने लगे हैं और मेरे मन की वह असहज वेदना अचानक समाप्त हो गयी है। इस द्विधापूर्ण मनःस्थिति में कुमार की परिचारिका बन कर यापन मेरे लिये कितना दुःसह कर्तव्य-भार था, तुम स्वयं समझ सकती हो। फिर भी, मैंने अपनी ओर से उनकी सेवा को ही अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य बना लिया। निश्चय ही कुमार ने एक परिचारिका के योग्य मेरे प्रति अपने स्निग्ध व्यवहार से मुझे प्रभावित किया था किन्तु जब मैं कुछ अधिक की अपेक्षा करने लगी तब उनकी ओर से अपने प्रति तटस्थता का ही भाव देखा। कभी-कभी मैं सोचने लगती, क्या कुमार के माता-पिता मुझे इस दयनीय अवस्था में डालकर मेरे माता-पिता से अब भी बदला ले रहे हैं! किन्तु मेरी आशंका का कोई दृढ़ आधार न था। वह धीरे-धीरे समाप्त हो गयी। कुमार ने बड़े सहज भाव से मुझे "पाखी" नाम से अभिहित किया था और मैं उनके इर्द-गिर्द एक खग-कुमारिका की भाँति फुदकती रही। मेरे पाँवों में किसी प्रकार की रस्सी न थी और न मेरे पंख ही उखाड़े गये थे। फिर भी लगता था, किसी अज्ञात सूत्र से बँधी मैं कुमार के आस-पास ही रहने के लिये पाली गयी हूँ। मैं पंजरबद्ध पाखी न होकर भी कुमार के दृढ़ स्नेह पंजर में अपने को आबद्ध अनुभव करने लगी थी। किन्तु तुम्हें तो मेरे वे दिन याद ही होंगे, जब से मैं अपने आभ्यन्तर प्रणय-जीवन की अन्तिम पराकाष्ठा पर पहुँच रही थी, फिर भी मैं कितनी प्रसन्न थी! तुमने मेरी प्रसन्नता के आवरण को बड़ी सफाई से हटा दिया था और एक प्रकार से मैं तुम्हारे सामने पहली बार अनावृत हुई थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुमने अनुभव किया था कि जैसे वसन्त में मधुमास, मधुमास में नव पल्लव, नव पल्लवों में फूल, फूलों में भौंरे और भौंरों में मद की शोभा प्रकट हो जाती है वैसे ही तुम्हारे शरीर में नवयौवन ने क्रम से पदार्पण किया था। किन्तु मुझे अपने यौवन का भान बहुत देर बाद हुआ। जब महादेवी की देख-रेख में राजकुल में इधर से उधर घूमती रहती, वृद्ध कंचुकियों से चुहलें करती और वर्षवरों को छेड़ती तब मैंने अपने को एक बच्ची के रूप में ही अनुभव किया। कुछ कलाओं की शिक्षा-दीक्षा से मन में भावनाओं के अंकुर अवश्य उत्पन्न होने लगे थे, किन्तु फिर भी उस ओर से मेरा ध्यान खिंचा ही रहा। जब-जब मैं अपने प्रसाधन में व्यस्त होती, मैं अनुभव करती कि मेरे शरीर में कुछ परिवर्तन आने लगा है। किन्तु बाहर निकलते ही राजकुल के वातावरण में अपने उस प्रकार के अनुभव को लगभग भूल जाती। अचानक महादेवी ने मुझे कुमार की परिचारिका का पद दे दिया और युवा कुमार के सान्निध्य का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ तब मैंने अपने शरीर के सभी परिवर्तनों पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया था। मैंने अनुभव किया कि मेरे रूप में तब यौवन फुटाव ले चुका है, तब कुमार के युवा शरीर की गन्ध मेरी नाक में भर जाती और मुझे किसी अपरिचित उल्लास से भर देती।

तुमने यौवन के उन्हीं महमहाते दिनों में एक मुनि-कुमार के साथ प्रणय का सम्बन्ध-सूत्र अचानक इसी सरोवर के तट पर जोड़ लिया था। जब कि मैंने उस प्रकार के सम्बन्ध-सूत्र को जोड़ने के लिये किसी प्रकार की योजना नहीं बनायी और यूँ ही वह अज्ञात रूप में जुड़ता गया। इस घटना ने मुझे अवश्य ही कुमार की परिचारिका मात्र रहने न दिया। अपनी ओर से मैंने उन्हें अपना और कुछ बना लिया, किन्तु दुर्भाग्य है कि वे मुझे आद्योपान्त एक परिचारिका की सीमा में ही बँधी देखते रहे। मैं उनकी दृष्टि में पत्रलेखा से "पाखी" अवश्य बनी, किन्तु यह मात्र उनका सहज स्नेह था, जो मुझे एक परिचारिका के योग्य नामान्तर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मात्र था। वह कोई पुरस्कार या उपहार न था। किन्तु मैं उतने मात्र से उल्लसित और उद्वेलित हो रही थी। यदि एक बार भी मेरी वेषभूषा पर कुमार एक क्षण के लिये स्थिर दृष्टि से देख लेते तब लगता, मेरा सारा प्रयत्न सफल है। किन्तु कुमार की तटस्थता अपने आप में जितनी मात्रा में अविचल रही उतनी मात्रा में मैं अपने प्रति उनके उस अनुदार भाव से व्याकीर्ण हुई। मेरी व्याकीर्णता को उन्होंने किसी प्रकार लक्षित नहीं किया और मैंने कभी नहीं चाहा कि वे उसे लक्षित कर सकें। किन्तु तुम्हारी स्निग्ध एवं भेदिनी दृष्टि ने मेरे अन्तर की गहराई को बड़े सहज भाव से छू लिया और मैं सम्पूर्णतया तुम्हारे समक्ष अनावृत हो गयी। वह स्थिति मेरे लिये कितनी असह्य हो गयी थी!

मैंने अपने आभ्यन्तर प्रणय को एक विलक्षण सुखानुभूति के रूप में कभी अनुभव किया हो, ऐसा स्मरण नहीं। सम्पूर्णतया मेरे लिये वह एक विकट प्रश्न बना रहा। किन्तु तब भी मैंने उसे जीने में ही अपनी सार्थकता का कुछ-कुछ अनुभव किया। उसे मैं पूर्णतया जी सकी हूँ, ऐसा नहीं समझती, क्योंकि ऐसा लगता है, मैंने एक मार्ग पकड़ लिया है, जो उस सुदूर लक्ष्य तक मुझे पहुँचा सकता है। किन्तु यह आशाकणिका आज कितनी मन्द है, कितनी शीतल होती जा रही है, सोच नहीं पा रही हूँ।

मैं केवल तुम से ही यह बात कह सकती हूँ कि मैंने किसी क्षुद्र स्वार्थ या लिप्सा से प्रेरित होकर कुमार को अपना "सर्वस्व" नहीं माना है। वैसे जाने-अनजाने उस स्थिति में यदि मेरी क्षुद्र लिप्सा कुछ तीव्र भी हुई हो तो अन्ततः मैं दुर्बल नारी ही तो ठहरी! किन्तु मैंने अपने को, अपने क्षुद्र अन्तर्गत की उद्वेलना को कुमार पर किसी प्रकार प्रकट नहीं होने दिया। यदि मैं ऐसा करती तो कभी कुमार की 'पाखी' न रह पाती। उनके औदार्य से अभिभूत मैंने उनकी तटस्थता की पीड़ा बड़े धैर्य से सहन की। क्या इतना कुछ मेरे हिस्से में "लाभ" नहीं है?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वस्तुतः लाभ या लिप्सा कभी मेरे चिन्तन के विषय नहीं रहे। मैं समर्पित अवश्य हुई, किन्तु समर्पण को सर्वात्मना आत्मसात् न कर सकी। इसके पूर्व कि मैं कुमार को, उनके महाकाश जैसे विशाल व्यक्तित्व को अपने घट की सीमा में समेट लेने का प्रयास करती, कई खण्डों में टूटकर बिखर-बिखर गयी। मेरे अस्तित्व का अब कोई कण अपने प्राथमिक रूप में नहीं है।

मुझे प्रथम बार इस कठोर संसार में जिनसे सहानुभूति मिली वह हैं कुमार की श्रद्धेया जननी। मुझ अनाथ को उन्होंने अपने दूध-भरे अंक में भर लिया था। मुझे लगा था, एक बड़े विशाल वट-वृक्ष की छाया में पहुँच गयी हूँ। और, उसके बाद जब तुमने अपने निकट कुछ क्षण के लिये मुझे बुला भेजा और मुझे अंक में भर लिया तो लगा था, मुझ तृषार्ता को अमृत का उत्स मिल गया है! मैं यहाँ दो आत्मीय जनों की सहानुभूति के सहारे ही जी सकी हूँ और अपने प्रति कुमार की तटस्थता की वृत्ति को सम्पूर्णतया स्वीकार कर सकी हूँ। जब कुमार ने अपना हृदय देवी कादम्बरी के अर्पित किया और इस घटना से मैं अवगत हुई तब अपनी आन्तरिक दयनीयता के फलस्वरूप मैं शतधा विभक्त हो चुकी थी। फिर भी मैं आज तक जीवन को ढोती आयी हूँ। आज मेरे पाँव में क्षमता नहीं कि खड़ी भी हो सकूँ। मैं थक चुकी हूँ। कुछ समय के लिये विश्राम चाहती हूँ। सम्भव है यह अच्छोद-सरोवर का शीतल अंक मुझे विश्राम दे सके।

मेरे मन में कभी एक क्षण के लिये भी यह आकांक्षा उदित न हुई कि मेरा प्रणय मुझे उच्चता की चोटी पर पहुँचा देने वाला सिद्ध हो। वस्तुतः मैंने प्रणय की भावना को कभी बहुत गहराई से नहीं लिया। बस, मैं इतना ही जानती थी कि कुमार मेरे मन की अतल गहराई में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। किन्तु यह सत्य मेरी किसी भी प्रवृत्ति से प्रकट न हुआ, क्योंकि मैं अपने जीवन के सम्पूर्ण सुख-सौविध्य को ताक पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखकर, बल्कि यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने सम्पूर्ण जीवन को दाँव पर रखकर कुमार के प्रति अपने उस स्निग्ध भाव को स्वीकार किया था। फिर भी, तुमसे वह छिपा नहीं रह सका था। एक क्षण के लिये अपने को तुम्हारे समक्ष अनावृत अनुभव करके मैं लुटी-सी हो गयी थी। किन्तु उसी समय तुमने मेरी दयनीयता को लक्षित करके अपने सहज कारुण्य से मुझे सम्हाल लिया था। तुमने वचन दिया था कि वह सत्य, मेरे जीवन का सर्वस्व कभी किसी से नहीं कहोगी, यहाँ तक कि अपनी प्रिय सखी देवी कादम्बरी को भी नहीं बताओगी।

अब, जब कि मैं जीवन के ढहते कगार पर खड़ी हूँ, मैं उस सत्य को, अपने सर्वस्व को अपने निकटवर्ती सभी को जता देने में ही अपना कल्याण समझ रही हूँ। यहाँ तक कि कुमार से भी सब कुछ कह देना चाहती हूँ। मैंने अपनी समग्र सीमाओं के होने पर भी उन्हें अपने अन्तरतम में प्रतिष्ठित किया था। आज भी वह मन्दिर विद्यमान है। किन्तु कुमार की वह मूर्ति जैसे वहाँ भी अपनी तटस्थता में अपरिवर्तित हैं। तब मैं स्वयं तटस्थ हो चुकी थी। अब तो अपनी तटस्थता की सीमा तक पहुँच चुकी हूँ। अपने को एक अनन्त गहरे महासरोवर में निक्षिप्त करने जा रही हूँ। इसके बाद मेरे इस अस्तित्व की क्या स्थिति होगी, मैं नहीं जानती। अगर मेरा कुछ भी वश चला, मुझे कुछ भी स्वतन्त्रता मिली तब मैं अपने अन्तरतम में प्रतिष्ठित उस "तटस्थ देवता" को आर्द्र करने का प्रयास करूँगी। अपने विकीर्ण अस्तित्व के प्रत्येक टुकड़े को सम्हाल कर जोड़ने का प्रयास करूँगी और पुनः उसकी सेवा में जुट जाऊँगी। हो सकता है, वहाँ भी उसे कोई देवी कादम्बरी मिल जाय और पुनः वह मेरे प्रति अपना सहज तटस्थ भाव ही बनाये रखे। फिर भी मैं अपने प्रयास से कभी विरत नहीं रहूँगी। अन्ततः मैं नारी हूँ। बार-बार पराजित होकर भी अपने उस देवता के लिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समर्पित होती रहूँगी। तुम क्या इस प्रयास में सफलता के लिये अपने आशीर्वाद से मुझे अनुगृहीत करोगी ?

तुमने अपने नवयौवन के उन्मेष के आरम्भ में प्रथम बार बसन्त-लक्ष्मी का स्वागत किया था और अपनी माँ के साथ इस सरोवर में स्नान करने आयी थीं। तब तुम्हारा हृदय यहाँ अकस्मात् दिखायी पड़े एक मुनिकुमार के प्रति आकृष्ट हुआ। तब तुम अपने को न रोक सकी थीं और वह मुनिकुमार भी तुम्हें देखकर उसी प्रकार आकृष्ट हुआ था। लगभग मेरे जीवन में कुमार का अव्यक्त रूप में प्रवेश भी उनके युवा शरीर की अपरिचित गन्ध के माध्यम से ही हुआ था। मैं देर तक उस गन्ध को महसूस करती रही और धीरे-धीरे उसे आत्मसात् करती रही। एक यौवन-कषायित नारी के लिये पुरुष-शरीर की वह गन्ध परिणाम में बड़ी उद्वेजक सिद्ध होगी, ऐसी मेरी कल्पना न थी।

तुम्हारे और मुनि-कुमार के परस्पर आकर्षण ने प्रणय को बड़ी ऊँची भूमि में प्रतिष्ठित किया था। किन्तु उस मुनि कुमार के विरह में तुमने जो व्रत लिया है वह तुम्हें पार्वती की कोटि में पहुँचा देने वाला है। हम जैसे सामान्य लोग तुम्हारे स्पर्श मात्र से कृतार्थ हो रहे हैं। किन्तु मैं अपने विपरीत दैव को क्या कहूँ, जो इस जीवन में मेरी 'साध' पूरी न हुई। कुमार के भुज-पाश में मैं कई बार बँधी हूँ। किन्तु बन्धन के सहज सुख से तब भी वंचित रही हूँ। उनकी तटस्थता ने मुझे तब भी एक परिचारिका की सीमा से ऊपर उठने न दिया।

प्रणय के अपने उदात्त जीवन में तुमने प्रतीक्षा को बहुत गम्भीरता से जीया है। उस प्रकार का धैर्य एक सामान्य नारी के जीवन में सम्भव नहीं। मैं शायद उस परीक्षा में नितान्त असफल सिद्ध हूँगी। वैसे मैंने कोई प्रतीक्षा की है या आगे के जन्म में प्रतीक्षा करती रहूँगी ऐसा कुछ निश्चय नहीं करती। क्योंकि वह एक बड़ी विकट स्थिति है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं अवश्य कुमार को समग्र रूप में पाने की आकांक्षा के साथ इस जीवन से विरत हो रही हूँ, किन्तु वह आगे का जीवन मेरा प्रतीक्षा का होगा, ऐसा नहीं कह सकती। क्योंकि मैं अपने में उस ऊँचाई तक जाने की क्षमता का अनुभव नहीं कर पाती हूँ। बस, इतना है कि यदि मैं प्रतीक्षा कर सकी तो करूँगी, अवश्य करूँगी।

जिस तृषा को लेकर मैं अपने भीतर कुमार को आत्मसात् करने का निर्णय कर चुकी हूँ वह मेरे अस्तित्व के बिखरे कण-कण में अपनी तीव्रता के साथ व्याप्त है। मैं उसे किसी प्रकार अस्वीकार नहीं कर सकती। किन्तु तब भी प्रतीक्षा की मेरी स्थिति नहीं है और मैं नहीं जानती कि क्यों नहीं है। हो सकता है, मेरे मन में नैराश्य ने एक सीमा तक प्रभाव उत्पन्न कर रखा है। प्रतीक्षा का जीवन उसके विपरीत स्थिति का जीवन है। इसी कारण मैं उस ओर से विरत हूँ। आशा का कोई ज्योति-कण मेरे अस्तित्व में विद्यमान है ऐसा मुझे नहीं लगता। कुमार की मेरे प्रति तटस्थता मुझे इस प्रकार दयनीय बना देगी, ऐसी सम्भावना न थी। मैंने बार-बार निवेदन किया है कि मैं टूट चुकी हूँ। तुमने मुझे अवश्य सान्त्वना देकर अनुगृहीत किया है। किन्तु उस सान्त्वना से मेरा नैराश्य विचलित नहीं हुआ है। तुम पर-कटे पक्षी से उड़ान भरने की आशा ही क्यों करो!

प्रणय की आग जब समान रूप से दोनों ओर प्रज्वलित रहती है तब स्थिति उतनी दयनीय नहीं होती, जितनी दो पक्षों में से एक ही के हृदय में वह ज्वाला धधक उठती है, तब होती है। मैं उसी दयनीयता का पात्र हूँ। कभी-कभी, जैसा सुनती हूँ, मनुष्य के भी मन में जगने वाली आकांक्षा की तीव्र अग्नि अव्यक्त रूप से वातावरण पर प्रभाव डालती है! मैंने स्वयं तुम्हारे तपोमय जीवन के प्रभाव को सिद्धायतन के पशु-पक्षी, यहाँ तक कि पेड़-पौधों पर भी लक्षित किया है, किन्तु मुझ "वराकी" की आन्तरिक विकलता ने कभी कुमार को प्रभावित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया हो, ऐसा मैंने अनुभव नहीं किया। उनकी दृष्टि में मैं सदा "वराकी" ही बनी रही, और आज भी हूँ। क्या उन्होंने एक क्षण के लिये भी अनुभव नहीं किया कि मैं उनके इतने सन्निकट रहकर भी "वराकी" क्यों हूँ ? वस्तुत: कुमार की समस्त परिचारिकाओं में मुझसे बढ़कर कोई भाग्यशालिनी नहीं, फिर भी मेरी आन्तरिक दयनीयता ने सबसे अधिक मुझे ही "भाग्यहीन" होने के लिए बाध्य किया।

इस कठोर जगत् में मैंने एक मात्र तुम्हें पाया जो मेरी उस दयनीयता को लक्षित कर सकी हो और उसे तुमने अपनी सहानुभूति के उपचार से सह्य बनाने का प्रयास किया। वस्तुत: घायल की गति घायल ही जान पाता है। मैं नहीं कह सकती कि तुमने जितनी मात्रा में पीड़ा का अनुभव किया है, उस मात्रा में मेरी पीड़ा है। हर व्यक्ति की पीड़ा को सहने की क्षमता समान नहीं होती। मैं अपनी पीड़ा को जीने की अपनी क्षमता जैसे खो चुकी हूँ। फिर भी उससे मुझे छूट मिल जाय, इसकी आकांक्षा नहीं। यह मृत्यु, जो मेरे बहुत ही सन्निकट आ चुकी है, वह भी शायद उससे छूट नहीं दिला सकेगी। आगे के जन्मों में उसे पुन: जीने की क्षमता मुझे अर्जित हो सके, इस लिये कुछ देर विश्राम चाहती हूँ। तब भी कुमार की दृष्टि में वराकी बनी रहने की स्थिति समाप्त हो सकेगी, ऐसा कोई निश्चय नहीं है। क्योंकि जब से मेरे जीवन का आरम्भ हुआ है तब से जाने किस नक्षत्र में जन्मी हूँ कि बाहर और भीतर सब ओर दु:ख के अतिरिक्त मेरी कोई अनुभूति नहीं रही। मेरा बाह्य हमेशा उल्लसित एवं प्रसाधित रहा, किन्तु मेरा आभ्यन्तर सदा व्याकीर्ण तथा नैराश्य के अन्धकार से ग्रस्त रहा। मैंने नारी का जीवन भले ही पाया, किन्तु मेरा नारीत्व मुझे निरन्तर एक व्याधि के रूप में मेरे अस्तित्व से सम्पृक्त रहा। और, शायद कुमार की उस भोली किन्तु अन्तर्यामिनी दृष्टि ने उसे कुछ-कुछ सम्भव है, लक्षित कर लिया था, और यह कारण था, कि मैं उनकी दृष्टि में एक "वराकी" के अतिरिक्त कुछ न रही।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने जीवन में अनेक प्राणियों के साथ समवेदना का अनुभव किया है और उनसे गले मिलकर रोयी हूँ। किन्तु तुम पहली हो जो तुमने मेरी भीतरी पीड़ा को लक्षित करके मेरे साथ समवेदना की वातें की हैं और मुझे सम्पूर्णतया अनावृत कर सकी हो, इसके लिये मैं किन शब्दों में तुम्हारे प्रति अपना आभार निवेदन करूँ ?

तुम्हारा प्रिय-मिलन निश्चित है, मेरा अनिश्चित; किन्तु, मेरा उद्धार हो, यह तुम शुभकामना अवश्य कर सकती हो। सम्भव है, तुम्हारी तपःपूत अन्तश्चेतना की आर्द्र वाणी फलवती हो जाय। आज इस महासरोवर के शून्य तट पर हम दो प्राणी उपस्थित हैं, एक है कुमार का अश्व इन्द्रायुध और दूसरी अभागी मैं। यह निरीह पशु जाने क्यों मेरे पीछे लगकर यहां आ गया है। निश्चय ही इसने कुमार के प्रति सर्मपित होकर सेवा की है। यह ही था, जो किन्नर-युगल को पीछा कर सका और इस दिव्य-लोक तक चला आया। निश्चय ही कुमार को इसका अभाव पीड़ित करेगा। किन्तु यह पशु है तो क्या, इस संसार में यही एक प्राणी है जो इस समय मेरे साथ है। सरोवर में मेरे छलांग लगाते ही यह मूक प्राणी भी छलांग लगा लेगा, ऐसा इसकी छटपटाहट से लग रहा है। यह पशु है, किन्तु लग रहा है इसके साथ मेरा कोई न कोई जन्मान्तरीय सम्वन्ध है। यह बोल नहीं सकता, किन्तु इसकी उदास एवं गहरी नीली आँखें मुझे सब कुछ सूचित कर रही हैं। शायद इसने भी मेरे प्रति कुमार की तटस्थता को बहुत दूर तक अनुभव कर लिया था, इस कारण ही इसकी मेरे प्रति सहानुभूति तीव्र हो उठी है। मुझे इस वात का सन्तोष है कि मैं इस समय विलकुल अकेली नहीं हूँ। जहां तक मूक होकर रहने की बात है यह पशु भी मेरा समानधर्मा है। साथ ही कुमार की सेवा में सर्मपित होने में भी यह मेरा समानधर्मा है। मैंने तो इसे अपना अनुज जैसा स्नेह दिया है। स्वयं जव यह कुमार को पीठ पर ढोकर श्रान्त लौटता था तब मैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके पास जाकर इसके कानों में धीरे से कुछ कह देती और तब देखती यह उत्फुल्ल होकर अपना सिर हिलाने लगता। मैं इसे किसी पेड़ में बाँध दूँ तब भी अपनी सम्पूर्ण क्षमता से रस्सी तोड़कर मेरे साथ हो जायेगा।

अब मैं पत्र समाप्त कर रही हूँ। जाने-अनजाने मुझसे हुई त्रुटियों के लिये क्षमा करना। वस्तुतः तुम्हारा क्षमाशील व्यक्तित्व मुझ दुर्गता का एक बहुत बड़ा सहारा है। इस समय मुझे किसी सहारे की अपेक्षा नहीं। क्योंकि जो व्यक्ति अपने को मृत्यु के गर्त में जान-बूझ कर डाल देने के लिये उद्यत है उसे किसका सहारा चाहिए? फिर भी मैं तुम्हारे उस चित्त से जिसमें क्षमा और करुणा की निरन्तर हिलोरें उठती रहती हैं कुछ अपेक्षा करती हूँ। हो सकता है मेरे आगे के जन्मों में वही पूँजी मेरे काम आ जाय और मेरा उद्धार घटित हो। कुमार को पूर्णतया पाकर भी इस जन्म में खोती रहने की पीड़ा भोग चुकी हूँ। आगे यदि उन्हें भी खोकर भी पा सकी तो मैं उसका श्रेय तुम्हारे आशीर्वचनों को ही दूँगी। एक बार फिर तुमसे क्षमा की भिक्षा के लिये प्रार्थना करके विदा ले रही हूँ।

तुम्हारी अनुजा
पत्रलेखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कादम्बरी के नाम

कोमलतरहृदये देवि,

मैंने पहली बार कुमार के साथ हेमकूट की यात्रा की तब तुम्हें हिमगृह में अस्वस्थ अवस्था में पड़ी देखा। उसके पूर्व तुम्हारे सम्बन्ध में कुमार के श्रीमुख से बहुत कुछ सुन चुकी थी। निश्चय ही कुमार ने तुम्हारे अप्रतिम रूप-लावण्य और हृदय की सरलता के विषय में जो कुछ सुनाया था वह कुछ भी अतिशयोक्ति न था। कुमार के साथ उस दिव्य लोक में पहुंच कर और तुमसे मिलकर मैं धन्य हुई थी। एक परिचारिका के जीवन में इतना बड़ा अवसर उपस्थित होना सचमुच एक अघटित घटना थी।

सम्भवतः तुम्हें स्मरण हो मुझे देखकर तुम्हारे मुख से अकस्मात् यह वाक्य निकल पड़ा था 'अहो मानुषियों में भी प्रजापति का कितना पक्षपात है!' सम्भव है मेरे रूप में तुम्हें कुछ "चौंकाने वाला तत्व" दृष्टिगोचर हुआ हो। कुमार के निकटतम परिचारिका होने के कारण मैं कुछ ही समय के परिचय के पश्चात् तुम्हारा भी विश्वास-भाजन हो सकी। यह मेरी धन्यता का दूसरा प्रमाण है।

कुमार के हृदय में तुम्हारा प्रवेश विधाता की सृष्टि में एक "योग्य समागम" कहा जा सकता है। वस्तुतः उसे "चित्राचान्द्रमसयोग" या "मणिकांचनयोग" भी कह सकते हैं। परस्पर इतनी तीव्र आकांक्षा पर भी, तुम दोनों अपने-अपने माता-पिता की अनुमति के आकांक्षी रहे, यह तुम्हारे और कुमार के सहज आभिजात्य की सूचक बात है। मैंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुत निकट से तुम दोनों को पीड़ित होते हुए देखा है और उस पीड़ा से प्रभावित हुई हूँ। किन्तु अब बहुत विलम्ब नहीं, जब तुम दोनों का पाणिग्रहण सम्पन्न होगा और हेमकूट की गन्धर्व राजकन्या अवन्तिदेश के प्रतापशाली सम्राट् तारापीड़ के आयुष्मान् कुमार चन्द्रापीड़ की पत्नी होकर ऐहिक जीवन के चरम ऐश्वर्य सुख का भोग प्राप्त करेगी। उस समय वह दृश्य देखने के लिये पत्नलेखा जीवित न रहेगी—किन्तु उस सुख-भोग के उन्माद-भरे जीवन में यदि कभी अपने आस-पास कोई मुरझाती हुई कलिका दृष्टिगोचर हो जाय तो सम्भव है तुम दोनों ही एक क्षण के लिए मुझ "वराकी" का स्मरण कर लो।

तुमसे परिचय के पश्चात् मैंने अपने जीवन का जो एक ही लक्ष्य निर्धारित कर लिया था, वह यह था कि तुम और कुमार दोनों ही परिणय के पवित्र सूत्र में बंध जांय। नियति की इच्छा होगी तो मेरी वह साध स्वयं शीघ्र पूरी होगी। और, बीच में उपस्थित यह बाधा समाप्त होगी। तुम्हारे कोमल हाथों के स्पर्श से कुमार का शरीर इस अवस्था में भी निरन्तर निर्मल एवं उद्दीप्त बना रहेगा। यह सब कुछ यही सिद्ध करता है कि तुम ही एक मात्र कुमार के उपयुक्त बना कर विधाता द्वारा भेजी गयी हो। अतः मैं तुम्हारे हित के लिये, तुम्हारे सौभाग्य के लिये हृदय से शुभ-कामना करती हूँ। वस्तुतः मेरे पास इससे बढ़कर तुम्हें अर्पित करने के लिये कुछ भी नहीं है।

कुमार के विरह में तुम्हारा उस प्रकार पीड़ित होना और उस अवस्था में मुझे अपना एकमात्र विश्वसनीय मान लेना, इन दो स्थितियों ने मुझे आन्तरिक रूप से एक विषम परिस्थिति में डाल दिया था। मैं बहुत कुछ अपने को भूल-सी गयी और तुम्हारे सुख के लिये व्याकुल हो उठी। मैं यह नहीं कह सकती, कि तुम्हारी पीड़ा कहाँ तक आन्तरिक है। किन्तु तुम्हारे शरीर पर उसका जो प्रभाव था वह मुझे स्पष्ट लक्षित हो रहा था। मुझे तुम्हारी दयनीयता कहीं अधिक लगी। तुमने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शायद अपने जीवन में प्रथम बार उस प्रकार का कष्ट झेलना आरम्भ किया था। मैं अपने जीवन के आरम्भ से ही कष्ट झेलने की अभ्यस्त हो चुकी हूँ। मैं बड़ी सहजता से उन्हें झेल लेती हूं। किन्तु जिसने सूर्य की प्रखर किरणों का ताप जीवन में कभी नहीं अनुभव किया हो उसका अचानक विरह की ज्वाला से परिचय हो जाय तो वह प्राणी निश्चय ही मरणान्त पीड़ा का पात्र होगा। तुम्हारी स्थिति कुछ ऐसी ही थी। अतः तुम मेरी अपेक्षा अधिक दयनीय लगीं और इस अनुभूति के होते ही, मैं तुम्हारे प्रति समर्पित हो उठी। अब अपना जीवन मेरे लिये कुछ भी चिन्तनीय नहीं रह गया। जिस प्रकार कुमार मेरे प्रति तटस्थ थे उसी प्रकार मैं स्वयं अपने जीवन के प्रति तटस्थ हो गयी। इस परिस्थिति में मेरी आन्तरिक स्थिति स्वयं मेरे लिये महत्वहीन हो गयी और धीरे-धीरे मैं अपनी उस पीड़ा से मुक्त हुई। मुझे अपने ही जीवन से तब प्रथम बार यह सीख मिली थी कि अपने प्रियजन के सुख-सौविध्य के लिये अपने को सर्वथा भूल जाओ, अपनी क्षुद्र सुखाशाओं को परे हटा दो और उसके समर्पित हो जाओ। फिर देखो, तुम किस प्रकार प्रसन्न होते हो। किन्तु मैं तुम्हें दयनीय देखकर किसी प्रकार प्रसन्न न थी। क्योंकि तुम्हारी दयनीयता के निवारण का एक मात्र उपाय कुमार का समागम था और वह मुझे इस लिये भी अभीष्ट था कि कुमार भी तुम्हारे विरह में उसी प्रकार पीड़ित थे। तुम दोनों की पीड़ा मेरे लिए असह्य थी। अतः मैं अपने सुख:दुख की परवाह न करके तुम्हें सान्त्वना देने और तुम्हारा सन्देश कुमार तक और कुमार का तुम तक पहुंचाने के व्यापार में जुट गयी। इस व्यापार में मैंने अपनी देह तक को भुला दिया। मैं मार्ग की नाना कठिनाइयां झेलती रही और यथासमय उज्जयिनी तक पहुंच कर तुम्हारे सन्देश से कुमार को आश्वस्त किया। तुम क्या मेरी दयनीयता की कल्पना कर सकती थीं? वस्तुतः तुमने कुछ भी नहीं सोचा होगा। बड़े लोग छोटों के सुख-दुख की परवाह प्रायः नहीं करते और यदि करने लगें तो उनका बड़प्पन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कैसे हो। मैं तुम पर कोई मिथ्या दोष आरोपित कहीं करती। तुम लोग कभी नीचे उतर कर सामान्य जन की कठिनाइयों को सोचो, इसके लिए तुहारे पास समय ही कहाँ है ? सौभाग्य या दुर्भाग्य से मैं एक राजकन्या होकर भी इस सीमा से नीचे उतर चुकी हूँ। एक राजकन्या परिचारिका का जीवन जीये, इसे तुम क्या सोच भी सकती हो ? मैंने अब तक इसी कारण तुमसे अपने सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझी और न तुमने भी कभी मेरे सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं किया।

मुझ पर तुमने पूर्ण विश्वास करके अपने हृदय की उन सभी बातों को कह सुनाया है, जिन्हें देवी महाश्वेता जैसी तुम्हारी अन्तरंग सखियां ही सुनने की अधिकारिणी थीं। मैं अपने प्रति तुम्हारे उस अखण्ड विश्वास के लिये तुम्हारी अनुगृहीत हूं। कुमार की भाँति ही तुमने मुझे एक सामान्य परिचारिका से बढ़कर प्रतिष्ठा दी है। इसके लिये भी तुम्हारा आभार मानती हूं। किन्तु वह सब कुछ एक औपचारिकता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। गन्धर्वों के पास शरीर-सुख के लिये साधनों की पर्याप्त मात्रा मैंने देखी है। उनमें कोई मुझे वृद्ध या रुग्ण नहीं दिखा। सब के सब भोग-परायण और सुख-समासक्त लगे। किन्तु तुमने एक मर्त्यलोक के राजकुमार से प्रणय-सम्बन्ध स्थापित करके यह सिद्ध कर दिया कि शरीर के सुख-भोग से भी कुछ ऊंचा जीवन का लक्ष्य है। मनुष्यों में बड़ी कमियां हैं, वे एक सीमा में ही सुख को भी सह पाते हैं। तब भी तुम्हारा कुमार के प्रति सहज आकर्षण सिद्ध करता है, कि तुम एक उदार प्रकृति की, उन्नत विचारों की राजकुमारी हो। मनुष्य-लोक तुम्हें प्राप्त कर, अपने भावी सम्राट् की अर्धांगिनी के रूप में उपलब्ध कर अवश्य धन्य होगा। और, अपने तपःपूत प्रणय के जीवन से दोनों लोकों को कृतकृत्य करने वाली देवी महाश्वेता को प्राप्त कर भी वह धन्य होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो सकता है, अपने उन्हीं सौभाग्यशाली दिनों में कभी तुम्हें इस दासी का स्मरण हो आये और कुमार अपनी "पाखी" को एक क्षण के लिये याद कर लें। मैं नहीं चाहूंगी कि ऐसा अनपेक्षित प्रसंग तुम्हारे जीवन में स्मृति के रूप में आये, फिर भी यदि आ ही जाय तो किसी प्रकार प्रयास करना कि प्रसंग बदल जाय। क्योंकि एक भाग्यहीन परिचारिका की स्मृति यूं भी तुम्हारे लिये अपेक्षित नहीं और वह प्रसंग जो केवल उदासी से भर दे अथवा मन को कुछ अनपेक्षित पीड़ा का पात्र बना दें, आवश्यक नहीं कि देर तक प्रवर्तित हो।

हो सकता है, मेरे पूर्व जीवन के विषय में तुम्हें कुछ जानकारी हो जाय, तब भी तुम मेरे लिये, कृपा करके व्यथित न होना। मैंने जो कुछ भी वेदना झेली है वह इसलिये नहीं कि मुझे किसी से सहानुभूति मिले। मैंने अप्रतीकारपूर्वक सब कुछ सहन किया है और चिन्ता तथा विलाप से रहित होकर जीवित रही हूं। किन्तु इसके लिये मैं क्या करती कि मेरा दैव ही मुझसे विपरीत हो चुका था। मैंने उसकी विपरीतता भी स्वीकार कर ली थी और सब ओर से तटस्थ होकर मौन के दुर्ग में घिर कर अपने कर्त्तव्य निभाती रही। इतना होने पर भी मैं एक कमजोर नारी हूं यह स्वीकार करती हूं। मेरे मन में भी एक दुर्बल नारी की व्यथा पलती रही है और वह इस सीमा तक पहुँच चुकी है कि मृत्यु के अतिरिक्त मेरे सामने कोई मार्ग नहीं।

जिसके जीवन में पीड़ा सहज हो जाती है वह बड़ी आसानी से उसे झेल लेता है, किन्तु जिसका परिचय उससे नया होता है वह यदि मात्रा में कम भी हो तो उसके लिये वह असह्य हो जाती है। हम मानुषियों के जीवन में व्यथा का स्थान बहुत अधिक होता है। मैं एक प्रतापी सम्राट् के वैभव-सम्पन्न राजकुल में रहकर भी अपने दुर्भाग्य के कारण व्यथा झेलती रही हूं, अतः मेरा जीवन एक सामान्य जन के जीवन के समान ही रहा है। अतः सुख-दुःख के झोंके मैंने सहज भाव से अनुद्वेलित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होकर सहन किये हैं। किन्तु कभी-कभी सहन की भी एक सीमा होती है। मैं उस समय अवश्य उद्वेलित हुई थी जब तुम्हारा प्रणय परिचय कुमार के साथ घटित हुआ था। स्वयं जब वे किन्नर-युगल की घटना के बाद स्कन्धावार लौटे थे तब उनके ही श्रीमुख से मैंने सब कुछ सुना था और अपने व्यथित हृदय को शत-शत खण्डों में बिखरते अनुभव किया था। कुमार ने अपने जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि के रूप में तुम्हारे साथ अपने प्रणय को स्वीकार किया था। वास्तव में वे सही मार्ग पर थे। फिर भी उनमें वह परिवर्तन मेरे लिये असह्य बन गया।

निश्चय ही उनके साथ अपने प्रत्येक व्यवहार में मैं बाहर से प्रसन्न रही। तुमने भी मेरी उस बाह्य प्रसन्नता को ही लक्षित किया था। क्या यह उचित नहीं कि मेरी प्रसन्नता कुमार की प्रसन्नता पर ही निर्भर रहे? और हुआ भी ऐसा ही। किन्तु मेरे भीतर की उदासी और बढ़ते हुए अँधेरे को न तो कुमार ने और न तुमने ही भाँपा। कभी तुम लोग अपने सुख स्वार्थ की सीमा से मुक्त न हुए। हन्त, कुमार भी मुझसे हमेशा भोले ही बने रहे। हालाँकि उनका वह भोलापन भी मुझे अधिक प्रिय था। वे अपने को मुझ पर छोड़कर इतने निश्चिंत हो जाते कि बस उनको आगे के कर्त्तव्य का ध्यान ही न होता। मुझे स्मरण कराना पड़ता। मैं उनके लिये पहले से समयानुकूल वस्त्राभूषण की व्यवस्था रखती और जब वे उन्हें धारण करने लगते तब कहते "पाखी मैंने तो सोचा ही नहीं कि आज मुझे ऐसे ही वस्त्राभूपण धारण करने की आवश्यकता है।" और स्नेह से मेरे कपोल पर एक हल्का-सा चाटा लगा देते। मैं उनके इस व्यवहार से एक क्षण के लिये सिहर उठती। यह सब कुछ तुमसे आज इसलिये कर रही हूँ कि शायद तुम अपने सौभाग्य के चढ़ते दिनों में कुमार के निकट रहकर भी उनके अनुकूल वस्त्राभूपण की व्यवस्था न कर पाओ। तुम कोई उनकी परिचारिका तो नहीं हो? तुम्हारा पद उनकी हृदयस्वामिनी का पद है। किन्तु मैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक रहस्य की बात तुमसे निवेदन करना चाहूँगी कि हृदयस्वामिनी के पद पर प्रतिष्ठित होकर भी कभी-कभी कुमार की परिचारिका बन कर सेवा करने का सुख अनुभव करना, फिर तुम्हें कुछ अपूर्व ही आनन्द मिलेगा। मैं एक सहज परिचारिका होकर उस आनन्द की गहराई में खो चुकी हूँ। किन्तु मेरी अर्चना कभी सफल न हुई, इसका मुझे आज भी खेद है। उस खेद को भी मैं स्वीकार कर चुकी हूँ और स्वयं संवेदनशून्य होकर इस संसार से, इस जीवन से बिदा ले रही हूँ।

वस्तुत: जिसे अपने से फुर्सत नहीं वह दूसरों के सम्बन्ध में ध्यान ही कैसे दे सकता है? अपने सम्बन्ध में मेरा मौन स्वयं दृढ़ होता गया और वह दुर्ग सम्भवत: अभेद्य ही रह जाता, यदि देवी महाश्वेता से मेरी ऐकान्तिक वार्ता न होती। देवी महाश्वेता बहुत अंश में मेरी समान-धर्मा सिद्ध हुईं और मैं भी अपने को उनसे छिपा न सकी थी। किन्तु तुम आज तक मुझे नहीं समझ सकीं और यह ठीक भी हुआ, अन्यथा सामान्य जन की व्यथा की कहानियां तुम्हारे विरह-ताप को धूमिल कर सकती थीं। तुम अपनी सीमा में रहो, यह आवश्यक था। क्योंकि संसार का एकपक्षीय ज्ञान ही तुम्हारे लिये हितावह था।

किन्तु दुःख इस बात का है कि कुमार इतने अनुभवशून्य नहीं हैं। उन्हें संसार के विषय में अच्छा ज्ञान है। वे जिस प्रकार छाया के सुख से परिचित हैं उसी प्रकार प्रखर किरणों का परिताप भी झेल चुके हैं। फिर भी वे मुझसे तटस्थ रहे। क्या उन्हें अपने राजकुमार होने और अभिजात होने का विशेष ध्यान रहा? वे तो खूब जानते थे कि मैं भी राजकन्या हूँ। महानुभाव वंश में मेरा भी जन्म हुआ हैं। इसमें अपना ही कुछ दुर्भाग्य कह सकती हूँ। हो सकता है मुझमें ऐसा कुछ नहीं था जिसमें कुमार के हृदय मेरे प्रति आकर्षण का भाव किंचित् मात्र भी उत्पन्न होता। और तुममें उन्होंने एक साथ सब कुछ पा लिया था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने देश में प्राय: मैंने अनुभव किया है कि लोग आपस में उस राजकुमार की वहुत प्रशंसा किया करते हैं जो परी देश की राजकुमारी से विवाह कर लेता है। वास्तव में तुम्हारा गन्धर्व लोक "परी देश" नहीं तो क्या है? और तुम परी देश की राजकुमारी नहीं तो क्या हो? उन्हें अपने देश के लोगों से ऐसी प्रशस्तियाँ सुनने को मिलेंगी और तब उनके मन में कुछ अपने प्रति "विशिष्ट" होने का गर्व भी होगा।

वैसे व्यक्तिगत रूप से अपने प्रति तटस्थता के लिये कुमार को दोषी नहीं कहती हूँ और अपने प्रति कुछ भी जिज्ञासा न रखने वाली तुम्हारे प्रति मेरे मन में कोई विकार नहीं है। मैं तो अपने इस शत-शत खण्डों में विकीर्ण अस्तित्व के समग्र सुप्तप्रतिबुद्धकल्प चैतन्य से समर्पित होकर तुम दोनों के यथाशीघ्र समागम की शुभकामना करती हूँ, और यहाँ से विदा लेती हूँ। शायद मेरी यह अन्तिम शुभकामना कुछ भी तुम्हारे काम आ जाय। मैं तुम्हारे कहाँ तक काम आ सकी हूँ, मैं नही जानती। किन्तु इतना अवश्य जानती हूँ कि पत्रलेखा ने अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को कुमार की सेवा में समर्पित कर दिया है। किन्तु मेरा वह समर्पण एक मूक अर्चना के अतिरिक्त कुछ नहीं। उसमें कभी कोई दीपक नहीं जला, कभी शंख-ध्वनि नहीं हुई और न कभी अगुरु की सुरभि ही वातावरण में फैली। अतः वह पूजा, वह समर्पण कहाँ तक सध सका, मैं नहीं जानती। कुछ भी अतिरिक्त लिप्सा मेरे मन में अब शेष नहीं है। और, मैं आज पूर्ण रूप से रिक्त हूँ। कुमार की अर्चना में प्रस्तुत मेरे अस्तित्व की यह कलिका कई खण्डों मे विखर चुकी है। तुम्हें अगर फुर्सत मिले तो भ्रमण के व्याज से ही इधर अवश्य आना। सम्भव है दो-एक टुकड़े तुम्हारे स्वागत में तुम्हारे चरणों से लिपट जांय। बस तुमसे इतना ही कह कर विरत हो रही हूँ।

तुम्हारी दासी
पत्रलेखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चन्द्रापीड़ के नाम

मेरे देवता,

तुम्हें यह पत्र लिखने की उत्कण्ठा का संवरण सम्भवतः अब मेरे लिये कठिन है। यद्यपि ऐसा अपने मन का कुछ भी नहीं जो तुमसे अन-कहा रह गया हो, तथापि आज इस पत्र के माध्यम से पुनरुक्ति करने की धृष्टता कर रही हूं, क्षमा करना। और कहीं ऐसा तुम्हें लगे कि मै "अतथ्य" कह रही हूं तो भी एक सहज ईषत्स्मित से मेरी अनुभव-शून्यता को स्वीकारते हुए पुनः क्षमा करना। वैसे तुमने मुझसे जाने-अनजाने हुए असंख्य अपराध क्षमा किये हैं। इसी विश्वास से आज मैं इस पत्र के माध्यम से मुखर हो रही हूं।

तुम्हारे साथ के बीते हुए क्षणों की स्मृतियां ही मेरे जीवन की एकमात्र उपलब्धि हैं। मैं इन्हें अपने तक सीमित रख सकती थी, किन्तु ऐसा करना अब मेरे लिये सम्भव इस कारण भी नहीं कि इस पत्र के समाप्त होने के पश्चात् ही मैं अपने को अच्छोदसरोवर के अर्पित कर दूंगी। इस परिस्थिति में जब कि अपना अन्त करने जा रही हूं मैं कैसे चाहूंगी कि मेरी एक भी बात व्यर्थ अथवा मिथ्या हो। आखिर किसी प्रकार के अतथ्य के प्रकाशन से मुझे क्या मिलेगा? मृत्यु के कगार पर पहुंचने के पूर्व यदि मैंने तुमसे असत्य कहा तो मेरा उद्धार कैसे होगा? मैंने यहाँ "उद्धार" शब्द का प्रयोग सोच-समझ कर किया है। अगले प्राप्त होने वाले जन्म में मैं तुम्हें पाकर ही अपना उद्धार मानूंगी, क्योंकि मेरी समग्र तपस्या, मेरी सम्पूर्ण अर्चना का एक मात्र लक्ष्य तुम हो, केवल तुम, जो मुझे मिल कर भी नहीं मिले हो। तुम्हें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाकर भी खोने की पीड़ा आजीवन झेलती रही हूं। तुम्हारा ध्यान इतनी तुच्छ सी बात की ओर क्यों आकृष्ट होता यह मैं जानती थी। तुम्हारे जीवन का लक्ष्य महान है। तुम्हें अपनी क्षुद्रता में समेट पाने की धृष्टता भी कैसे कर सकती थी?

उस दिन, जब तुम अपने अश्वरत्न इन्द्रायुध पर सवार होकर राजकुल पहुंचे तब मैंने राजप्रासाद से प्रथम वार तुम्हें देखा था। तब मेरी कल्पना यह न थी कि तुम्हारे सान्निध्य का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त होने वाला है। तुम्हारे पधारने की सूचना वैसे पहले से थी। क्योंकि राजकुल और राजप्रासाद में तैयारियाँ पहले से हो रही थीं। तुम्हारे दर्शनों के लिये उस प्रकार उमड़ती नगरवासियों की भीड़ मैंने प्रथम वार देखी तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इन्द्रायुध पर बैठे तुम भी खूब फब रहे थे। लगता था अपने वेगशाली वाहन पक्षिराज गरुड़ पर विराजमान साक्षात् भगवान् विष्णु हों। क्या अच्छा होता, तुम्हारे साथ उस समय बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से प्रसाधित कोई दिव्य रमणी होती, जिसे देखकर साक्षात् लक्ष्मी की कल्पना हो जाती। यह एक क्षुद्र-सी विचार-विद्युत तब मेरे अन्तरतम के किसी अज्ञात कोने में सहसा कौंध गयी थी। तब मुझे क्या पता था, कि मुझे ही "लक्ष्मी" के उस पद पर बैठने का सौभाग्य मिलने वाला है। किन्तु अपनी सीमाओं के कारण मैंने अपने को लक्ष्मी के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया।

तुम्हारे पीछे-पीछे अतिशय मन्दगति से हज़ारों की संख्या में मूर्धाभिषिक्त राजाओं के कुल में उत्पन्न राजपुत्र-गण अपने-अपने घोड़ों पर चल रहे थे। उनके व्यायामपुष्ट अंग-प्रत्यंग से शौर्य उद्वेलित हो रहा था। उनकी प्रसन्न मुखकान्ति से विनय का जैसे सोता फूट रहा था। वीच-वीच में उनके घोड़ों की मधुर हेषाध्वनि और खुरपुटों के आघात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से उत्पन्न शब्द वातावरण को अत्यधिक वाचालित कर रहे थे। मैं वह सब कुछ स्तब्धभाव से देख रही थी।

तुम्हारे साथ एक और सुपुरुष चल रहा था जिसमें अन्य राजपुत्रों से अलग ही एक आकर्षण था। तुम्हारे उस मित्र वैशम्पायन के विषय में वह मेरा प्रथम ज्ञान था। वास्तव में वैशम्पायन को और तुम्हें एक-दूसरे से पृथक् करके देखना तो सम्भव था, किन्तु समझना बहुत कुछ कठिन था। आगे चलकर जो तुम-दोनों की प्रगाढ़ मैत्री का मुझे परिचय मिला उसके वर्णन के लिये मेरे पास उपयुक्त शब्द नहीं।

मैं यहाँ वर्णनों द्वारा अपने इस पत्र को बोझिल करना नहीं चाहती। क्योंकि मेरे पास समय संक्षिप्त है। इस शरीर के अस्तित्व की अनुभूति अब मेरे लिये बहुत देर तक सह्य नहीं। व्यथा-भरे अपने क्षुद्र जीवन के इस इतिहास को, न जाने तुम्हारे समक्ष उघाड़ कर रख देने की मेरे मन में यह कैसी तीव्र सी आकांक्षा है!

हाँ, तो तुम उस दिन निश्चय ही अधिक प्रसन्न लग रहे थे। वैसे तुम्हारी सहज प्रसन्न मुखकान्ति, आज तक मुझे स्मरण नहीं कि कब म्लान हुई है। जिसे लेकर हज़ारों की संख्या में नर-नारी एकत्र हों जिसके दृष्टिपात मात्र पर अपने को न्यौछावर कर देने के लिये सैकड़ों वीर पुरुष तैयार हों, ऐसे तुम्हारे सौभाग्य की चर्चा यहाँ अपेक्षित नहीं। किन्तु उस भीड़ में, जहाँ तक मैंने दूर से लक्षित किया था एक बहुत सी छोटी-सी घटना घट गयी थी, जिसकी ओर शायद ही किसी का ध्यान गया होगा। उल्लास और उन्माद के वातावरण में किसने कब दूसरे की परवाह की है? तुम तक तो उस घटना की खबर पहुंची ही कहाँ होगी। घटना यह थी। एक अधेड़ दरिद्र महिला अपने छोटे से बालक को गोद में लिये बड़ी उत्सुकता से भीड़ को देख रही थी। बालक गोद से उतरने के लिये हठ करने लगा। तब उसने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसे उतार दिया। एक ही क्षण में उसका चंचल बालक उसके हाथ से छूट गया और उस भीड़ में खो गया। तुम और तुम्हारे पीछे चल रहे लोग कुछ दूर निकल गये थे। महिला बड़ी व्याकुलता से अपने बालक को ढूँढ़ रही थी। किन्तु उसकी ओर किसी का ध्यान क्यों जाता? अन्त में एक स्थान पर उसका शिशु अर्धमृत सा रक्तरंजित मिला और वह कुछ देर उसे गले में लिपटाकर रुदन करती रही। रोते-रोते वह नागरिकों द्वारा तुम पर बरसाये धान के लावों को चुनने में व्यस्त हो गयी। कुछ क्षण के लिये मेरी दृष्टि तुम से हटकर इस दृश्य पर टंग गयी। क्या यह महिला उन मूक अभागे लोगों में से तो नहीं जो तुम्हारे राज्य में दीन दुःखी उपेक्षित एवं श्रमशील हैं? उज्ज-यिनी के बड़े विशाल प्रासाद जिनके श्रम से निर्मित हैं तथा जो श्रम करते-करते भूख और नाना रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। तुम्हारे जैसे स्वसुखपरायण शासक कुलीन जनों के पास जिनकी सुख-सुविधा के विषय में ध्यान देने के लिये अवसर नहीं होता।

अब तक तुम राजद्वार पर पहुँच चुके थे। वहाँ सामान्य नागरिकों का प्रवेश रोक दिया गया था। सजे हुए हाथियों की जमघट के बीच चल कर तुम अपने घोड़े से उतर गये। सुहृद् वैशम्पायन का हाथ पकड़ कर तुमने राज-भवन में प्रवेश किया। इस बीच सम्भवतः तुम्हें महाराजाधिराज के निकट ले जाया गया। निश्चय ही तुम्हें पाकर उनका हृदय आनन्द-गद्‌गद हो उठा होगा। इतने गुणवान् और विनीत तुम जैसे पुत्र-रत्न को प्राप्त करने वाले पिता के हृदय में सम्भव है, तब दो विचार उदित हुए होंगे, एक तो तुम्हें युवराज के पद पर अभिषिक्त करने का और दूसरा तुम्हारे अनुरूप ही सौन्दर्यगुण-सम्पन्न किसी राज-कन्या के साथ तुम्हारे विवाह का। कुछ ही देर बाद तुम अपने सुहृद के साथ अन्तःपुर में पधारे। तब तक मैं तुम्हारी माता के पास पहुंच गयी थी। वहाँ भी एक छोटी-सी भीड़ उपस्थित थी जिसमें कुछ तो सफेद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कंचुक पहने हुए शुद्धान्तवंशिक थे। कुछ कषायरक्त वस्त्र धारण किये हुए प्रशान्त आकार वाली वृद्ध प्रव्रजिताए थीं और कुछ स्त्रीवेष में सजे वर्षवर थे। तुमने पहुंचते ही माता को बड़े सहज भाव से झुक कर प्रणाम किया। महारानी ने झट उठ कर बड़े स्नेहाकुल भाव से तुम्हारे मस्तक को चूम कर तुम्हें आलिंगन में बाँध लिया था। माँ के अपने पुत्र के प्रति इतना उन्मुक्त स्नेह मेरे लिये बड़ा ही सुखद प्रसंग था। मुझे माँ के स्नेह को अपने जीवन में पाने का सौभाग्य नहीं मिला था। किन्तु मेरे लिये दूसरी माँ के रूप में स्थित महारानी से जो कुछ स्नेह मिला था वह मेरी अपनी स्थिति के अनुरूप होने पर भी कुछ कम न था। तुम्हें प्राप्त कर उनका वही स्नेह तत्काल शताधिक स्रोतों में जैसे फूट पड़ा था। उनकी आँखें भर आयी थीं और उनकी प्रसन्न मुखकान्ति से मानों शुभाशंसाओं के फब्बारे से फूट रहे थे। निकट से खड़े वैशम्पायन को भी उन्होंने इसी प्रकार सम्भावित किया।

मैंने तत्काल लक्षित किया कि तुम दोनों की ओर से एक क्षण के लिये हट कर महारानी की दृष्टि एक कोने में खड़ी मुझ पर पड़ी। मैं थोड़ी देर के लिये सावधान हो गयी। किन्तु यह न समझ सकी, कि उनके इस स्निग्ध दृष्टिपात का क्या अर्थ था। आगे की घटना से अवश्य ही उसका अर्थ स्पष्ट हो गया था। सम्भवतः उन्होंने तत्काल मुझे तुम्हारी "ताम्बूलकरंकवाहिनी" के पद अर्पित करने का निर्णय लिया होगा। उनका यह निर्णय मेरे भविष्य के जीवन का ही आधार बन गया। महारानी के साथ तुम्हारे बैठने और उनके द्वारा तुम्हारे अगों को बार-बार करतल से सहलाने के उस दृश्य में जितनी मात्रा में स्नेहार्द्र भावों का योग था उतनी मात्रा मैं शब्दों का योग नहीं था। उन्होंने अपने लाडले पर बीती गुरुजनों की यन्त्रणा का भी अनुमान करके तुम्हें सहलाया था। तुम्हारे धैर्य पर आश्चर्य प्रकट किया था। और बड़े ही अस्फुट स्वर में कह डाला था। 'बेटा, जिस प्रकार अपने पिता के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आशीर्वाद से तू सभी विद्याओं से आलोकित हो उठा है, उसी प्रकार शीघ्र ही तुझे अनुरूप वधुओं से युक्त देखूंगी। मैंने दूर पर खड़े होकर इन शब्दों को बड़ी कठिनाई से सुना तो मेरे मन में एक क्षणिक विकम्प का सा भाव उदित हुआ था। यद्यपि उस विकम्प में कोई विशेष हलचल न थी। तथापि वह एक झटका-सा दे गया और मैं वहाँ स्तब्ध रह गयी। निश्चय ही तुमने उस भीड़ में मुझे नहीं देखा होगा। किन्तु मैंने बड़ी ललक-भरी दृष्टि से तुम्हें निहार लिया था। तुम तत्काल मेरे हृदय के देवालय मे प्रथम बार एक सुधड़ मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। किन्तु यह "प्रतिष्ठा" अत्यन्त अव्यक्त थी जिसे मैं लक्षित नहीं कर पायी थी।

वहाँ उपस्थित प्रव्रजिताओं में जिन एक पर तत्काल मेरा ध्यान गया उनकी यहाँ चर्चा करना चाहती हूँ। वे थीं आर्या देवरक्षिता। उनकी अवस्था अन्य प्रव्रजिताओं की भाँति अधिक ढली हुई न थी, फिर भी प्रव्रज्या में प्रवृत्त होने के कारण उनकी मुखकान्ति अवश्य बाहर से कुछ म्लान लग रही थी। मैंने प्रथम बार उनकी म्लान मुखकान्ति को एक क्षण के लिये प्रफुल्ल होते हुए देखा। तुम्हें वे बड़ी स्निग्ध दृष्टि से देख रही थीं। उनके साथ अन्य वैठी प्रव्रजिताओं की भाँति उनकी दृष्टि उस वातावरण में उदासीन न थी। तभी मेरे मन में उनके पूर्व जीवन के विषय में सुनी हुई कुछ घटना याद आयी। वे तुम्हारी माँ महारानी विलासवती की बहुत निकट के सम्बन्ध की कदाचित् बड़ी बहन थीं। यौवन में उनकी अंगकान्ति से प्रभावित होकर महाराज ने पट्टमहिषी के पद पर उन्हें ही प्रतिष्ठित करने का निर्णय लिया था और एकान्त में अपनी आन्तरिक इच्छा व्यक्त भी की थी। किन्तु आर्या का हृदय संसार के सुख-भोग की आकांक्षा से विरत था। विलासिता को वे बड़ी हीन दृष्टि से देखती थीं। उन्हें जीवन में "राजकुल" की सीमित परिधि में जीना पसन्द न था। वे संसार के पीड़ित जनों के प्रति अत्यधिक आर्द्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थीं। उनकी पीड़ा को निकट से जानकर निराकरण के लिये निरन्तर सचेष्ट रहती थीं। फल यह हुआ कि महाराज को ही उनके इस दृढ़ विचार के आगे झुकना पड़ा और तव तुम्हारी मां विलासवती पट्टमहिषी के पद पर प्रतिष्ठित हुई थीं। सम्भवतः यह चयन भी आर्या के निर्देश से ही महाराज ने किया था।

आर्या अपनी अनेक प्रव्रजिता साथिनों के साथ एक सुदूर पहाड़ी पर साधना-निरत रहती हैं और कभी-कभी महारानी के आग्रह पर उन्हें नाना धार्मिक कथाओं से उद्बोधित करने के लिये "राजकुल" भी आ जाती हैं। यद्यपि उन्हें मुखर होते हुए मैंने कम देखा है, तथापि महारानी के प्रति उनका स्नेह ही है जो उन्हें अपने स्वभाव के विपरीत स्थान में भी आने के लिये बाध्य करता है, अन्यथा वे अधिकतर गाँवों में जाया करती हैं। निर्धन और भूखे-नंगे लोगों की पीड़ा से वे द्रवित हो जाती हैं और उन तक अन्न-वस्त्र और अन्य अपेक्षित सामग्री पहुँचाने का प्रयत्न करती हैं। रुग्ण बालकों को देख कर वे उन्हें छाती से लगा लेती हैं और उनके रोगों का उपचार स्वयं करती हैं, या औषधियाँ सुझाती हैं। ईश्वर ने जाने कैसा हृदय उन्हें दे रखा है, जो सदा दुखी जनों के लिये द्रवित ही रहता हैं! वे उन्हीं के लिये मात्र जीवित रहती हैं। एक वार मैंने उनके विषय में यह सब कुछ सुना तो उनके साथ रहने की आकांक्षा प्रकट की। तव महारानी ने बड़े स्नेह से मुझे डांट दिया था। कहा था, "पत्रलेखा, अभी तेरी उम्र ही क्या है? तू अव से प्रव्रजिताओं के साथ रहेगी! जीवन के सुखों से वंचित, दर-दर की ठोकरें खाती फिरेगी! तुझे अपनी कुछ परवाह नहीं!" वस, मैंने फिर ऐसी कोई आकांक्षा तव से महारानी के समक्ष प्रकट नहीं की और उनके आदेशों का ही पालन करती रही। किन्तु इतना अवश्य कहूंगी कि राजकुल की सीमा में रहकर, इस अनन्त विशाल धरा-धाम पर फैले वैविध्यपूर्ण जीवन को जव तक निकट जाकर कोई नहीं देखे तो उसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन के और जगत् के विषय में अनुभव शून्य ही होगा। जीवन का दूसरा पक्ष दुःख है, जो अपने आप में अलग आकर्षक है। राजकुल में भी दुःखी प्राणियों का निवास है, किन्तु यहाँ दुख को प्रकट करना अपराध माना जाता है। यहाँ प्राप्ति का आनन्द है। और, अभाव की पीड़ा इस वातावरण में व्यर्थ है।

महारानी के भवन से निकल कर तुम सम्भवतः महामन्त्री शुकनाश के पास गये। मैं भी भीड़-भाड़ से अलग अपने एकान्त प्रकोष्ठ में आ गयी और कुछ देर तक पर्यंक पर निश्चेष्ट पड़ी रही। देर तक तुम मेरे हृदय और बुद्धि के आस-पास छाये रहे। मुझे लगा कि तुम ही एक मात्र मेरे चिन्तनीय बन गये हो, किन्तु यह एक क्षणिक अनुभूति थी। उस समय मेरी दृष्टि गवाक्ष से सन्ध्याकाल के अस्त होते हुए सूर्य पर गयी और देर तक उस प्रकाश-पिंड को आँखों से ओझल होते हुए निहारती रही। तब तक बाहर का शोर-गुल भी काफी शान्त हो चुका था। निकटवर्ती वृक्षों पर विश्राम के लिये पहुँचे पक्षियों का कलरव स्पष्ट सुनायी दे रहा था। तुम तब तक अपने विश्राम के लिये पहुँच गये होंगे, ऐसा मेरे मन ने निर्णय लिया। मेरे लिये यह पूरा दिन बड़ा सुखद रहा। क्योंकि अब तक राजकुल में रहते मैंने किसी उत्सव में इतना उल्लास नहीं देखा था। मेरे मन में तत्काल यही भावना उत्पन्न हुई, धन्य हैं अवन्तिनरेश महाराजाधिराज तारापीड़ और धन्य हैं उनकी पट्टमहिषी विलासवती, जिनसे तुम जैसे पुत्र-रत्न ने जन्म लिया है। मैं भी एक ऐसे ही, किन्तु अभागे पिता-माता की सन्तान हूँ, जो जीवन के प्रभात में ही उनसे पिछड़ गयी हूँ। वे तो कालकवलित हो गये। केवल उनकी सजल स्मृति को ढोने के लिये मैं इस कठोर संसार में जीवित रह गयी हूँ। जाने क्यों, मेरी दृष्टि में इन समग्र, उल्लासों के पीछे क्षार अश्रु-जल का उमड़ता हुआ महासमुद्र ही उभर आता है। किन्तु यह भावना तब अधिक तीव्र रूप में जागरित होती है, जब मैं कभी एकान्त में होती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हूँ। उस समय मेरे मन में उल्लास के दृश्यों की सुखद अनुभूति का कोई अंश शेष नहीं रहता। बस, एक क्षीण रोष का उदय होता है, जो मेरे अन्तर्मन को क्षुब्ध करके विलीन हो जाता है। मैं उस क्षोभ को प्रकाशित करूँ, यह मेरी स्थिति के अनुरूप न था, और करूँ भी तो किसके समक्ष ! महारानी विलासवती हैं जो मुझे अपनी कन्या से बढ़कर स्नेह देती हैं ! ना बाबा ना ! मैं तो उनके पास पहुँचते ही अपने अन्तर्मन की क्षुब्ध अवस्था को बिलकुल भूल जाती हूँ। उनका मेरे सिर पर हाथ रखकर दुलारना, मेरी आँखों में आँखें डालकर स्नेह उड़ेल देना, सब कुछ मेरे लिये सम्मोहन-सा बन जाता है। कभी-कभी तो होता हैं, उनकी गोद में सिर रखकर रो पड़ूँ, पर ऐसा नहीं कर पाती हूँ। किन्तु आँखें तो लगभग छलछला ही जाती हैं। बड़ी कठिनाई से तब मैं अपने को सम्हाल पाती हूँ। और, जब महाराजाधिराज वहाँ उपस्थित होते हैं तब मैं अत्यधिक सिमटी सावधान और लगभग सन्त्रस्त-सी होती हूँ। महारानी मेरे सम्बन्ध में उनसे बड़े अस्फुट स्वरों में ईषत् स्मित के साथ कुछ कहती हैं, जिसे मैं सुन नहीं पाती हूँ।

तब मैं अपने प्रकोष्ठ से निकल कर प्रासाद की छत पर आ गयी तो देखा कि दिवस-लक्ष्मी के पद्मराग-नूपुर की भाँति सूर्यमण्डल नीचे सरकता जा रहा था। सूर्य का आलोक जलप्रवाह की भाँति पश्चिम दिशा की ओर बढ़ रहा था। सुदूर वृक्षों पर बैठे चक्रवाक पक्षियों के जोड़े एक-दूसरे से अलग होने लगे। प्रतीची का कर्ण-पुष्प सूर्यबिम्ब नेत्रों से ओझल हो गया और सन्ध्या की लाली अम्बर में सर्वत्र उल्लसित हो गयी। काले अगुरु से निर्मित पत्रलताओं की भाँति तिमिरलेखाएँ दिङ्मुखों पर स्फुरित होने लगीं। भौंरे कमलिनियों के अंक में पहुंच चुके थे। निशाविलासिनी के मुख के अवतंस-पल्लव की भाँति सन्ध्याराग विगलित हो चुका था। सन्ध्यादेवता के अर्चन के उपयोग में लाये गये बलि-पिण्ड दिशाओं में फेंक दिये गये थे। मयूरयष्टियों पर मयूरों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाँति अन्धकार के टुकड़े जम गये थे। कपोतों ने गवाक्षों के आस-पास विवरों में विश्राम ले लिया था। अन्तःपुर की दोलाओं की घण्टियाँ युवतियों के हट जाने से मूक हो चुकी थीं। राजभवन के सहकार वृक्षों की शाखाओं के पंजरगत शुक-सारिका पक्षियों का कलरव शान्त हो चुका था। संगीत के विश्राम के पश्चात् वीणायें हटायी जाने लगी थीं। भवन के कलहंस भी युवतियों के नूपुरों के शब्दों के साथ मौन धारण करने लगे थे। उत्सव में सजे हुए मतवाले हाथियों के कान के शंख, चामर तथा नक्षत्र-माला आदि आभरण उतारे जा चुके थे। अश्वशालाओं में दीपक जलाये जा चुके थे। पुरोहित लोग स्वस्त्ययन करके निकल चुके थे। राजकुल की कक्षाओं से राजपुत्र लोग भी बाहर जा चुके थे और केवल वहाँ कुछ परिजन ही दिखायी दे रहे थे। हजारों की सँख्या में दीपिकाएँ चम्पक पुष्प की भाँति राजभवन के मणिकुट्टिमों पर प्रदीप्त होने लगी थीं।

मैं न चाहते हुए भी उस दृश्य के विषय में यहां फैलाकर लिख गयी हूं। मैं उस दिन कुछ भीतर से उल्लसित थी और अपने आस-पास के वातावरण में खो जाना चाहती थी। किन्तु लगा कि यह सब कुछ ऐश्वर्य का चमत्कार मात्र है। इसमें जीवन की सहजता नहीं है। महाराजाधिराज की अपार शक्ति ने यह सब कुछ एकत्र कर रखा है। हजारों, लाखों की संख्या में लोग उस शक्ति के अनुगत होकर अपने को अर्पित कर रहे हैं। इसे एक व्यवस्था की संज्ञा दी जाती है। किन्तु एक क्षण के लिये मैंने जो अपने क्षतविक्षत शिशु को लेकर लावे चुन रही स्त्री का दृश्य देखा था वह क्या इस व्यवस्था के अन्तर्गत नहीं आता ? मन इस प्रश्न के उत्तर की अपेक्षा में भटकने लगा था, तभी मेरी दृष्टि तुम्हारे श्रीमण्डप के द्वार पर जा टकरायी, जो तब तक बन्द हो चुके थे। सम्भवतः तुम अपने शयन कक्ष में पधार चुके थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरे दिन प्रात:काल परिजनों से विदित हुआ कि तुम तड़के ही उठकर महाराज की आज्ञा प्राप्त करके मृगया के लिये इन्द्रायुध पर सवार होकर जंगल की ओर निकल गये। तुम्हारे साथ सैकड़ों शिकारी कुत्ते पालने वाले भी सहायता में गये। वन्य पशुओं की हत्या तुम जैसे युवा राजकुमारों के लिये एक प्रकार का उत्साहवर्धक शौर्य-व्यापार माना जाता रहा है। सूअर, बाघ, शरभ और हरिण तुम्हारे वध्य होते हैं। कइयों को जीवित अवस्था में पकड़ लेना भी तुम्हारे शौर्य का एक अनिवार्य पक्ष होता है। तुम जैसों के इस शौर्य का यशोगान बड़े-बड़े कवियों ने किया है। इन्द्रायुध जैसे अश्व-रत्न को पाकर अपने को इस अवसर से तुम वंचित भी कैसे रख सकते थे? जब तुम मृगया से लौटे तो तुम्हारी स्थिति विचित्र थी। तुम पसीने से तर-ब-तर थे। तुम्हारे ललाट पर धूल की रेखा-सी जम गयी गई थी। कुछ देर विश्राम करके तुमने स्नान किया। तुम्हारे लिये महाराज के इशारे पर चतुर दासियाँ पहुँचकर विविध माल्य, आभरण, अंग-राग, वसन तथा पुष्पों को लेकर उपस्थित हो गयीं और तुम्हें सब अर्पित किया। तत्पश्चात् तुमने अपने मित्रों के साथ आहारमण्डप पहुँचकर भोजन किया। यह सब कुछ मेरे परोक्ष में हुआ, फिर भी परिजनों से मुझे विदित हो जाता था। मैं बड़ी जिज्ञासा से तुम्हारे द्वारा आहत पशुओं को देखने के लिए निकल पड़ी थी। दूर ही से देखा कि उनकी खालें उधेड़ी जा रही थीं। उनके शरीर से रक्तरंजित माँस-खण्ड काट-काट कर एकत्र किये जा रहे थे। तुमने, जिन्हें जीवित अवस्था में पकड़ रखा था उनमें हरिणों की संख्या अधिक थी। एक हरिणशावक छूट कर मेरी ओर आ गया था, सम्भवत: कुछ संरक्षण पाने की इच्छा से। प्राण-रक्षा के प्रयत्न में दौड़ने के कारण उसके अंग-प्रत्यंग कांटों से छिद से गये थे। कहीं-कहीं पर अब भी हल्की रक्त की धार निकल रही थी। बेचारा बड़ा संत्रस्त था। उसकी नीली आँखे जैसे कुछ ढूंढ रही थीं और कुछ न पाने की व्यथा से उदास थीं। मैंने हाथ में घास लेकर दिखाया तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह मेरे पास आ गया। अचानक देखते ही मैं उससे लिपट गई और देर तक उसे सहलाती रही। मैंने एक क्षण के लिये उसमें अपने छोटे भाई का प्रतिविम्ब देखा। देर तक उसे अपने अंक में लेकर कर रोती रही। उसे छोड़ने की इच्छा न होती थी। मेरा वश चलता, तो तुमसे पूछती, निरीह प्राणियों की हत्या से तुम्हें क्या मिला? निश्चय ही तुम मेरे इस प्रश्न के उत्तर में मात्र हंस देते। मैं जब अन्तःपुर पहुँची तब महादेवी की एक परिचारिकाने बहुत व्यकुल भाव से कहा - "तू कहां घूम रही है? मैं कब से तुझे ढूढ रही हूँ। महादेवी के पास अभी जा, विलम्ब करेगी तो उनकी अप्रसन्नता का भाजन बनेगी।" "अरे यह क्या" मैं अस्फुट स्वर में बोली और चल पड़ी। तब तक रात हो चुकी थी। महारानी के कक्ष में प्रवेश ही करती हूँ, कि देखती हूँ, महाराजाधिराज, वहां से निकल रहे हैं। मैं कुछ सिमट कर बगल में खड़ी हो जाती हूँ। उनकी एक दृष्टि मुझ पर पड़ती है और वे मेरे पास आकर मेरा सिर हल्के से दबाकर मुस्कराते हुए निकल जाते हैं। मैं ऊपर से नीचे तक एक प्रकम्प से सिहर जाती हूँ। तब एक क्षण के लिये मैं अपने पैरों में वेड़ियां महसूस करने लगी और फिर साहस करके महारानी के पास पहुँची। उन्होंने मुझे देखते ही अपने निकट बैठाया और प्रसन्न स्वर में बोलीं "पत्रलेखा, मैंने आज ही तेरे लिये एक निर्णय लिया है। तुझे कुमार की ताम्बूलकरंकवाहिनी के पद पर प्रतिष्ठित करना चाहती हूँ। मेरे विचार में, तू कुमार की सबसे योग्य परिचारिका सिद्ध होगी।" मैं उनके ये वाक्य सिर झुका कर सुनती रही। उनकी उंगलियां धीरे-धीरे मेरे सिर पर चल रही थीं। तत्काल भीतर ही भीतर मैंने अनुभव किया कि मेरे सामने का जगच्चक्र एक तीव्र आर्तस्वर के साथ चलते-चलते रुक गया है। मेरे मस्तिष्क की शिराएं दूर तक तन गयी थीं और मेरे भीतर यह हलचल क्रमशः तीव्र से तीव्रतर होती गयी। मेरे मुख से तत्काल उत्तर में कोई बात नहीं निकल रही थी। सम्भवतः महादेवी ने मेरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आन्तरिक स्थिति को भाग लिया और मुझे सहलाते हुए बोलीं—"पत्र-लेखा, घबराने की कोई बात नहीं, मेरा वेटा तुझे स्नेह देगा। परिचारिका की सीमा में रह कर भी तू उसके हृदय के निकट रहेगी। मैंने अपने मन में बहुत पहले ही यह निर्णय ले लिया था और महाराजाधिराज को मेरा यह निर्णय अच्छा लगा है। अभी-अभी हम दोनों तेरे विषय में ही चर्चा कर रहे थे।" सचमुच मेरे कानों को विश्वास नहीं हो रहा था। लग रहा था, मैं कोई स्वप्न देख रही हूँ। मुझे कल ही कुमार चन्द्रापीड़ के सामने उनकी ताम्बूलकरंकवाहिनी के रूप में सज-धजकर प्रस्तुत होना हैं। महादेवी विलासवती और महाराजाधिराज तारापीड़ के विपरीत अवन्ति-देश में पवन भी नहीं चलता। मुझ जैसी क्रीतदासी इसके विपरीत सोच ही क्या सकती है? वस्तुतः यह मुझ पर उनकी सबसे बड़ी कृपा ही है। यदि मैं कुमार के पास रह कर उनकी योग्य परिचारिका नहीं सिद्ध हुई तो मेरे जीवन की सबसे बड़ी असफलता होगी। मैंने मन ही मन अपने को सम्बोधित करते हुए कहा, "पत्रलेखा, तेरे भविष्य के बारे में विधाता का संकेत आज ही मिल गया है। तेरे इस सौभाग्य लाभ से राजकुल की सहस्रों परिचारिकाएं तुझ पर इर्ष्या करेंगी, किन्तु देखना, कहीं तेरा यह सौभाग्य तेरे ही लिये अभिशाप न बन जाय। कुमार के साथ रह कर किसी क्षण उनके ही कोप का भाजन न हो जाये। उस समय तू अपने सौभाग्य के सूर्य को अस्त होते हुए देखेगी तब तेरी क्या स्थिति होगी! अतः पहले से ही सम्हल जा। यह सौभाग्य वास्तव में तेरे लिये असिधारा-व्रत है।" मैं कुछ देर ठहर कर महादेवी के कक्ष से निकलकर अपने प्रकोष्ठ में आ गयी और देर तक नींद के लिये प्रयास करती रही, किन्तु उस रात मुझे बिल्कुल नींद नहीं आयी। मन नाना सम-विषम कल्पनाओं में व्याकीर्ण होता रहा। एक क्षण के लिये वह प्रसाद से उल्लसित होता तो दूसरे ही क्षण विषाद से भर जाता। मेरी स्थिति दोलारूढ़ की सी हो गयी। गवाक्ष के द्वार खोली तो बाहर से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चारणों तथा बंदी जनों के "प्राभातिक" की मधुर ध्वनि सुन पड़ी। एक सुखद वायु का झोंका मेरे प्रकोष्ठ में भर गया। मैं सिहर उठी।

तुम्हारे सामने प्रस्तुत होने की स्थिति की कल्पना से मेरा हृदय प्रातःकाल से ही धड़कने लगा था। मैं स्वयं अपने को प्रसाधित करने में व्यस्त हो गयी। प्रसाधन की कला में मैं अपने को निपुण मानती हूँ। किन्तु जब अपने को स्वयं प्रसाधित करना होता है तब मैं निर्णय नहीं कर पाती कि किन वस्त्र-आभूषणों में मैं अधिक फबूँगी। तुम्हारी पसंद के विषय में भी मुझे जानकारी न थी। तब भी मैं चाहती थी, कि अपनी ओर से मुझमें कोई कमी न रह जाय। वैसे मैं लावण्य की सहजता को अधिक प्रश्रय देती हूँ। और, जैसा कि मुझे सब ओर से विदित है, मेरी सम्पूर्ण अंगयष्टि की राजकुल में सराहना होती है। मुझे देख कर किसी सौन्दर्य-पारखी के मुख से अकस्मात् कोई पद्यांश निकल आया था "उन्मीलितं तूलिकेव चित्रम् !" मैंने इन्द्रगोप कीट के वर्ण जैसे मखमली अवगुण्ठन से अपने मुख को किंचित् ढंक लिया। प्रत्यग्र दलित मनःशिला की कान्ति की भाँति मेरे अंगों से लावण्य की प्रभा मानों प्रवाहित होने लगी थी। चरणों में मणिनूपुर बाँध लिये। सुवर्ण की मेखला से अपने कटि-प्रदेश को अलंकृत किया। दो-एक बार विशाल दर्पण के सामने ठुमुक चाल से चलकर अपने गतिविलास की मादकता की परीक्षा ली। नातिनिर्भर उभार वाले अपने वक्ष को रश्मिजाल से नेत्रों को चौंधिया देने वाली हारलता से सुशोभित किया। ताम्बूल-राग से रंजित मेरे अधर की कुछ और ही छटा थी। मेरे कपोलों पर मणिमय कुण्डल तथा मकरपत्रभंग की किरणें फैल रही थीं। मैंने अपने ललाट पर गाढ़े धूसर वर्ण का चन्दन लगाया। इस प्रकार सब ओर से मैं प्रसाधित होकर ठीक उस प्रकार चली जिस प्रकार कामदेव ही स्त्रीवेष में चल पड़ा हो। इतना होने पर भी मेरे हृदय में प्रकम्प कुछ बढ़ता ही जा रहा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे साथ ले जाने के लिये महादेवी के संकेत से एक वृद्ध कंचुकी ठीक समय पर पहुँच गये थे। जब मैं उनके सामने पहुँची तो उन्होने ऊपर से नीचे तक बड़ी भेदिनी दृष्टि से मुझे निहारा। मैं एक क्षण के लिये सहम गयी। फिर उन्होंने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए मुस्कुरा कर कहा, "वेटी, तू सचमुच कुमार की "ताम्बूलकरंकवाहिनी" के पद के योग्य है। यदि मेरा वश चले तो मैं तुझे इस से भी कोई ऊँचे पद पर प्रतिष्ठत कर दूं। वृद्ध कंचुकी की बात मेरी समझ में नहीं आयी। बस "वेटी" इतना मात्र सम्वोधन मुझे एक क्षण के लिये छू गया। मेरी आँखें नम सी हो गयीं। काश! मैं अपने माँ-वाप के पास होती तो मेरा स्थान निश्चय ही इस पद से ऊँचा होता। आज यह पद मेरे अब तक के लघु जीवन की सवसे महत्वपूर्ण उपलब्धि बन कर प्रस्तुत है। फिर भी मैं अपने में किसी अज्ञात अभाव की कल्पना से व्याकुल हो रही हूँ। इस वेदना को वृद्ध कंचुकी महाशय के मेरे प्रति व्यक्त सम्वोधन ने उभार दिया है। कुछ क्षण के लिये अपने भीतर में एक वेदनामिश्रित सुखानुभूति से तरलित हो उठी और उनके पीछे-पीछे बड़े सहज भाव से "श्रीमण्डप" की ओर चल पड़ी।

तब तक आकाश में सूर्यमण्डल कुछ ऊपर चढ़ आया था। श्रीमण्डप के द्वार पर अपने-अपने देश की वेषभूषा में सुसज्जित उपहार लिये कुछ सम्भ्रान्त लोग खड़े थे। द्वार के भीतर उन्हें प्रवेश की आज्ञा न थी। किन्तु जब मैंने अवारित प्रवेश किया तो लगभग मेरी ओर एक ही साथ सवकी प्रश्नात्मक दृष्टि पड़ी।

मैंने द्वार के भीतर प्रवेश करते ही तुम्हारे शयन-कक्ष के निकट एक नवनिर्मित स्थान पर अश्वरत्न इन्द्रायुध को देखा। वह हमें देखते ही अपने अंग-प्रत्यंग से परिस्फुरित होते हुए हिनहिनाने लगा। जैसे उससे हमारा कोई पूर्व जन्म का परिचय था। अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी प्रियजन को देखकर प्रसन्नता व्यक्त करने की यह विधि सम्भवतः पशुओं में सबसे अधिक घोड़ों में ही परिलक्षित होती है। वह एक क्षण के लिये घास का कौर उठाना भूल गया और उसकी प्रश्नाकुल दृष्टि हम पर टँग गयी। उसकी फड़कती नासा से एक विचित्र प्रकार की घर्घर ध्वनि निकल रही थी और अपने अगले दाहिने पैर से वाजि-शाला की कुट्टिम पर प्रहार पर प्रहार किये जा रहा था। तुम्हारे मृगया-प्रसंग में निश्चय ही उसे बीहड़ जंगलों में बेतहासा दौड़ लगानी पड़ी होगी। किन्तु उसके शरीर से रंचमात्र भी थकान का प्रभाव अभिव्यक्त नहीं हो रहा था। वह बड़ी कठिनाई से अपने पिछले पैरों में तथा गर्दन में लगे बंधनों की सीमा में अवरुद्ध था, जैसे उसका वश चले तो इस सीमा को अभी-अभी तोड़ दे और पृथ्वी के अनन्त विस्तार को पवन वेग से चल कर कुछ ही समय के अन्तराल में नाप ले। उसके अंगों में उभरी हुई पुष्ट मांसपेशियाँ उसके शारीरिक सौन्दर्य को और भी परिवर्धित कर रही थीं। उसके शरीर पर फैली एक कतार से नाना वर्णों की छटा तो और भी मन को उल्लसित कर रही थी। सचमुच वह अपने 'इन्द्रायुध' नाम को सार्थक कर रहा था। मालुम होता है, तुम्हारे ही मात्र उपयोग के लिये विधाता ने उसे इस संसार में भेजा था।

कुछ क्षण के लिये मेरा प्रकम्प जो तुम्हारे निकट पहुँचने की कल्पना से उभर गया था, इन्द्रायुध की श्रीकलित अभिराम शरीर-कान्ति के प्रभाव से शिथिल हो गया था। किन्तु उसी क्षण उस पर चारों ओर से लगे नाना प्रतिबन्धों को देखकर मैं स्तब्ध हो गयी थी। क्या तुम्हारी सेवा में निरत रहने वाले प्राणी को इसी प्रकार नाना प्रतिबन्धों का भाजन बन जाना होगा? मैं स्वयं अपनी सौभाग्यलब्ध स्थिति की कल्पना से कुछ आशंकाग्रस्त-सी हो रही थी। क्या मेरी वाणी, मेरा परिचय, मेरे व्यवहार, मेरा समस्त जीवन एक मात्र कुमार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के आसपास रह कर समर्पित हो जायेगा ? प्रतिबन्धों की सीमा में व्याकीर्ण और नियमों की शृङ्खलाओं में संयत ! नहीं, नहीं, इतना क्रूर अभिनय मुझे नहीं करना होगा। मैंने विनीत एवं मृदु प्रकृति के तुम्हें बहुत निकट से अपनी माँ के पास बैठे देखा था। उनके मुख पर प्रसाद की छटा निरन्तर लहरा रही थी। उनमें ऐसी कुछ अकरुणा होगी, यह कल्पना निराधार है। इन्द्रायुध तो पशु है। पशु तो प्रताड़न का सहज अधिकारी होता है। मैं तो नारी हूं, संवेदनशील और परिच-रणपरायण !

अब मैं तुम्हारे शयन-कक्ष में प्रवेश कर चुकी थी। वृद्ध कंचुकी ने इशारे से ही एक मुहूर्त में द्वार पर स्थित दूत को भेज कर वहां प्रवेश करने की अनुमति प्राप्त कर ली थी। मैंने प्रवेश करते ही देखा, तुम एक नातिविस्तीर्ण आसन पर बैठ कर वीणा की तन्त्रियों को बड़े सहज एवं मृदु भाव से छेड़ रहे थे। मुझे लगा, किसी भूले हुए स्वर-विशेष का अनुसन्धान कर रहे हो। हमें देखते ही तुम्हारी उंगलियां रुक गयीं। मुझ पर तुम्हारी एक हल्की किन्तु सजल दृष्टि पड़ी और प्रश्न का क्षुद्र-सा कण उसमें झिलमिलाने लगा। वृद्ध कंचुकी ने प्रणाम करके तुमसे निवेदन किया।

उन्होंने तुम्हे बताया कि मैं कुलूत देश की राजकन्या पत्रलेखा हूं। तुम्हारे पिता द्वारा उस देश पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् मैं वन्दीजनों के साथ लायी गयी हूं। मेरे माता-पिता और अन्य कुलजन उस संघर्ष में मारे जा चुके हैं। मेरा पोषण अन्तःपुर में परिचारिकाओं के बीच हुआ है। स्वयं महादेवी ने मुझ "अनाथ राजकन्या" का बड़े स्नेह से "दुहिता" की भावना से, लालन एवं संवर्धन किया है। अब मैं तुम्हारी "ताम्बूलकरंकवाहिनी" के रूप में भेजी गयी हूं। यह कह कर उन वृद्ध ने महादेवी की ओर से, मेरे साथ उनके निर्देश से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो कुछ कहा वह मेरे लिये कल्पनातीत था। मेरे कंधे पर हाथ रख कर उन्होंने कहना आरम्भ किया तो उनकी आँखें डबडबा सी गयी थीं। वहुत कठिनाई से अपने को सम्हालते हुए वे बोले "आयुष्मान् तुम इसके प्रति सामान्य परिजनों जैसा व्यवहार न करना। बालिका समझकर इसका लालन करना। यदि कदाचित् इससे कोई "चापल्य" भी हो जाय तो वड़े स्नेह से इसे समझा देना। अपनी शिष्या जैसी इसे देखना। सव प्रकार के विश्वसनीय कार्यों को इसे आत्मीय समझ कर सौंपना। वहुत छुटपन से ही यह बेचारी मेरी देखरेख में पली है। इसे मैंने अपनी वेटी ही जैसा दुलार दिया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह बच्ची तुम्हारी ही भाँति मेरे हृदय का एक टुकड़ा है। सम्भ्रान्त राजकुल में उत्पन्न होने के कारण भी इसके प्रति मेरा कुछ विशेष आकर्षण है और यह उस प्रकार के स्नेह तथा सम्मान की सहज अधिकारिणी है।" अव ऐसा लगा, वृद्ध का गला रुंध गया। तुम एक क्षण तक वड़ी स्तम्भित एवं सकरुण दृष्टि से मुझे निहारते रहे। किन्तु मैं लज्जा एवं संकोच के मारे गड़ी जा रही थी। मुझे तत्काल छिपने के लिये कोई जगह न थी। जव वृद्ध कुछ सम्हले और मुझे तुम्हें सौंप कर लौटने के लिये उद्यत हुए तो मैं उनके साथ ही लौट जाना चाहती थी, किन्तु ऐसा करना मेरी ओर से वड़ा अविनय होगा, ऐसा समझकर मैं भी स्तब्ध रही। तुमने केवल उनसे इतना ही कहा "अम्बा की जो आज्ञा" और यह सुनकर वे धीरे-धीरे लाठी टेकते हुए तुम्हारे कक्ष से निकल गये। मैं कुछ दूर पर तुम्हारे संकेत से वैठ गयी। हम दोनों ही कुछ देर तक मौन रहे। सम्भवतः तुम सोच रहे थे, बात कहां से आरम्भ की जाय ! तुम्हें शायद कोई उसका सिरा नहीं मिल रहा था। इसी कारण तुम कुछ परेशान से हो रहे थे, और मैं कुछ बोलूँ यह मेरी आन्तरिक व्याकीर्ण स्थिति के सर्वथा विपरीत था। तभी तुम्हारे स्मितदीप्त मुख से मेघ के गर्जन जैसी गम्भीर और स्निग्ध वाणी मेरे कानों तक पहुँची-"पत्रलेखे, यहाँ तुझे कैसा लग रहा है ?" प्रश्न जितना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छोटा और सरल था; उत्तर देना मेरे लिये उतना ही कठिन और अचिन्त्य हो गया ! अपने को बहुत सम्भालते हुए मैंने कहा—"कुमार, मुझे आपकी सेवा में नियुक्त किया गया है, बस इतना ही मैं जानती हूं।" मेरे चुप होते ही तुम बोल उठे, "तेरे लिये यह परिचारिका शब्द कुछ अच्छा नहीं लग रहा है, फिर भी तू मेरी 'ताम्बूलकरंक-वाहिनी' है, इसे अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता । मां की आज्ञा मेरे लिए शिरोधार्य है। किन्तु कहीं कुछ इस दिशा में उनसे त्रुटि हुई है, ऐसा मुझे लग रहा है। क्या ऐसा तू नहीं समझती !" यह तुम्हारा दूसरा प्रश्न और भी मेरे लिये कठिन था और मैंने इतना मात्र कहा था—"मुझे तो इसमें कुछ भी अन्यथा लक्षित नहीं होता ।" मेरी बात सुनकर तुम बड़े जोर से हंस पड़े थे, और मैं मुस्करा पड़ी थी । तुम्हारी हंसी और मेरी मुस्कान में कुछ इतना ही अन्तर रहा होगा, जो फूल झड़ने में और कली के फुटाव लेने में होता है ।

मुझे ऐसा लगा, इस हंसी के फव्वारे ने अकस्मात् वातावरण की गम्भीरता को समाप्त कर दिया और हम एक-दूसरे के और कुछ निकट आ गये । तुम रह-रहकर मेरी ओर देखने लगे थे और कभी-कभी हमारी आँखें एक क्षण के लिये एक-दूसरे पर स्थिर हो जाती थीं । मुझे ऐसा भी कुछ लगा, तुम मुझे टटोल रहे थे और इस अनुभव से मुझे गुदगुदी-सी आ रही थी । तब भी मैं असामान्य रूप से अचंचल रही । मैंने धीरे-धीरे ताम्बूल-करंक की ओर हाथ बढ़ाया और उसे खोल कर पान के बीड़ लगाने में व्यस्त हो गयी । तुम्र वीणा पर हाथ रखे ही बड़े स्थिर भाव से मेरे कृत्य को देख रहे थे । मैं अपने-आप में अत्यधिक सावधान हो गयी कि कहीं तुम्हें मेरे किसी व्यापार में कोई कमी लक्षित न हो जाय । मेरी स्थिति उस छात्र की-सी थी जिसकी गुरु के सामने परीक्षा हो रही थी । तुम्हारी नाना विद्याओं और कलाओं में निपुणता की चर्चा मैंने पहले से सुन रखी थी । मैं भीतर ही भीतर अतिशय जाग-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूकता के साथ, किन्तु सहज भाव से ताम्बूल के दो बीड़े लगाये और उन्हें सुरभित करके तुम्हारी ओर एक रजतपात्र में रखकर बढ़ाये तो तुमने बड़े हर्ष के साथ उन्हें स्वीकार किया। वस्तुतः यह तुम्हारी सेवा में अर्पित मेरा सबसे पहला व्यापार था। निश्चय ही यह शुरुआत बहुत सुखद और मेरे लिये बहुत ही रोमांचकारी रहा। उसकी स्मृति मुझे आज भी एक विलक्षण सुखानुभूति से आन्दोलित कर रही है।

तुमने ताम्बूल मुँह में डाल लिया था और शनैःशनैः उसके स्वाद-सुख से भर रहे थे। तुम्हारी मुखाकृति से मैंने कुछ ऐसा ही अनुमान किया था। कुछ क्षण बाद ही तुमने मुझे वीणा की ओर संकेत करते हुए पूछ दिया "क्या छेड़ती हो?" तुम्हारे इस वाक्य से मुझे झटका-सा लगा, फिर भी मैंने "हां" कहकर तुम्हारे आगे से वीणा को खींच लिया और अपनी अभ्यस्त उंगलियों से तारों को छेड़ने लगी। तुम तब उठकर एक उन्नत पर्यंकिका पर उपवर्ह के सहारे लेट गये और मेरे द्वारा उत्पादित एक करुण स्वर लहरी को ध्यानपूर्वक सुनने लगे। मैंने देखा, तुम्हारी आँखें आनन्दातिरेक के अनुभव से लगभग मुंदती जाने लगी थीं, मैं भी अपने को खोती जा रही थी और कुछ क्षण के लिए यह भूल गयी कि मैं तुम जैसे सधे वीणावादक के सामने बजा रही हूं। जब एक केन्द्र पर आकर मेरी उंगलियां थम गयीं तब तुमने आँखे खोलीं और देर तक मेरी ओर देखते रहे। कुछ अनपेक्षित रूप से स्वरलहरी, जो अभी-अभी शान्त हुई थी, कुछ अतिशय मात्रा में दर्द से भरी थी। यह प्रसंग उस भावना के अनुरूप न था, फिर भी अवश भाव से मैंने एक करुण राग ही छेड़ दिया। तुमने कहा था—"पत्रलेखे, खूब बजाती हो, लगता है करुण रस ही तुम्हें पसंद है।" कहते-कहते तुम गम्भीर हो गये थे। तुम्हारे मुख-मण्डल पर देर तक उस राग का प्रभाव-सा लक्षित हो रहा था। मैं सोचने लगी, शायद मुझसे कोई अपराध हो गया, किन्तु उसी क्षण तुमने कहा था—"ऐसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग, जाने क्यों अन्तरतम की गहराई तक पहुंच जाते हैं। जब भी तुम्हें अवसर मिले, तुम कुछ ऐसे ही राग छेड़ना।" तुम्हारे मुख से निकले इन शब्दों ने मुझे दूर तक तुम्हारे प्रति अपनापन से भर दिया और मैंने अपने को "धन्य" माना।

तुमने इसी प्रथम परिचय के अन्तराल में मुझे "पाखी" कहकर सम्बोधित किया तो मुझे कुछ अच्छा भी लगा और कुछ विचित्र भी। मैंने पूछ दिया—"यह क्या, आपने तो मेरा नाम ही परिवर्तित कर दिया !" तुम बोले—"हाँ, पाखी, 'पत्रलेखा' इस नाम से तुझे सम्बोधित करने में मुझे कुछ असुविधा का अनुभव हुआ है। और तेरे प्रति जो मेरे मन में एक कोमल धारणा-सी बन गई है उसके अनुरूप तेरा यह परिवर्तित नाम ही मुझे पसंद है, यदि तू अन्यथा न माने तो...।" मैंने तुम्हें बीच में रोकते हुए कहा—"ऐसा न कहें, मैं और आपकी बात को अन्यथा मानूँ ! आखिर इस परिवर्तित नाम का कुछ तो अर्थ होगा ?" तुमने कहा था, "हां पाखी, यह एक बड़े ही कोमल अर्थ को संकेतित करने वाला शब्द है। पाखी अर्थात् पंछी—चिड़िया। तेरे नाम के आरम्भ और अन्त वाले दोनों अक्षर कुछ परिवर्तित रूप से इसमें आ गये हैं। वस्तुतः यह पक्षी-शब्द का अपभ्रंश है। हम सम्भ्रान्तों के यहाँ इस शब्द का उच्चारण नहीं होता। तू मेरे जीवन में एक पाखी के रूप में प्रविष्ट हुई है, किन्तु इतना समझ लेना, तू कोई पंजरबद्ध पाखी नहीं।" कहते-कहते तुम हंस पड़े थे। मैंने यह सुना तो मेरे कानों तक रक्त की ऊष्मा व्याप्त हो गयी। मेरे लिये तत्काल अपने को सम्हालना कठिन-सा हो गया।

इसी बीच तुम्हारे सखा वैशम्पायन आ गये। उन्हें तुम तक पहुँचने के लिये किसी प्रकार की औपचारिकता अपेक्षित न थी। उनके आते ही तुम कुछ अधिक प्रसन्न और त्वरित हो गये। स्वाभाविक था कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हारे सुहृद् की दृष्टि मुझ पर एक जिज्ञासा के भाव से प्रेरित होकर पड़ी। तुमने उन्हें मेरा परिचय देते हुए कहा—"विशू, इससे मिलो, यह "पाखी" है। इसका पूरा नाम पत्रलेखा है। माँ ने मेरी "ताम्बूल-करंकवाहिनी" कहकर इसे भेजा है। अभी कुछ देर पहले आयी है।" तुम्हारे मित्र ने मेरे परिचय पर प्रसन्नता व्यक्त की और मुझ जैसी "ताम्बूलरंकवाहिनी" को प्राप्त करने पर तुम्हें "बधाई" दी। फिर तुम्हारे संकेत से मैंने तुम्हारे मित्र को ताम्बूल दिये। इस बीच तुम्हारे स्नान आदि की व्यवस्था की सूचना देने के लिये एक चर ने प्रवेश किया और तुम दोनों ही पर्यंकिका से उठ खड़े हुए। तुमने अपने मित्र के साथ जाते हुए मात्र इतना ही मुझसे कहा—"पाखी, घबराना नहीं, यहाँ सब कुछ अपना समझ कर व्यवहार करना। हम अभी आते हैं।"

तुम वैशम्पायन के कंधे पर हाथ रखे हुए बाहर निकल गये। मैंने एक क्षण के लिये अपने मुख पर पड़े झीने अवगुण्ठन को हटा कर तुम्हारे सुसज्जित कक्ष को ध्यानपूर्वक देखा। बहुमुल्य रत्नजटित पर्यंकिका से लेकर ऊपर से लटक रहे झाड़ों की व्यवस्था से तुम्हारे ऐश्वर्य की अनुरूपता को लक्षित कर रही थी। कुछ देर के लिये मैं तुम्हारे व्यवहार से भूल गयी कि तुम एक प्रबल प्रतापी महासम्राट् के सुयोग्य पुत्र-रत्न हो और मैं तुम्हारी एक परिचारिका हूँ। तुमने मुझे "पाखी" कह कर सम्बोधित किया और यह कहा कि मैं कोई पंजरबद्ध पाखी नहीं। इस बात ने मेरे मन को तुम्हारे प्रति एक अतिरिक्त अतिशय मृदु भावबोध से भर दिया। मैं सोच न सकी कि तुम इतने 'मृदु' एवं 'स्नेहशील' हो! निश्चय ही मुझ पर तुम्हारा जादू जैसा प्रभाव पड़ा और एक क्षण के लिये मैं उस एकान्त क्षण में नाच उठी। मेरे पैरों में बँधे नूपुरों की 'रुनझुन' तीव्र हो उठी। ठीक इसी क्षण मेरी दृष्टि एक स्थान पर महाराजाधिराज के चित्र पर पड़ी। चित्र में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनकी तनी हुई भौंहें देखते ही मेरा नाचना बंद हो गया और यहाँ अपने एक परिचारिका होने की स्थिति याद आ गयी और तुम्हारी 'पाखी' को लगा था कि उसके चारों ओर पंजर के छोटे-छोटे सीखचे घिरने लगे थे। उस पंजर के संकीर्ण घेरे में उसे पंख फैलाने के लिये भी अवकाश न था।

तुम देर तक नहीं लौटे। मैं तुम्हारे कक्ष से बाहर नहीं निकली और वहाँ निहित प्रत्येक वस्तु के साथ अपना परिचय स्थापित करती रही। पहले तुम्हारी पर्यंकिका पर अस्त-व्यस्त हुए सुकोमल प्रच्छद-पट को व्यवस्थित किया और उपवर्ह को सिरहाने लगाया। उस समय मेरे नासापुटों में तुम्हारे सुरभित अंगों के स्पर्श के कारण प्रच्छद-पट से निकल रही क्षीण-सी सुगन्ध भर गयी। मुझे लगा उसी समय तुम उस सुगन्ध के साथ मेरे तन-मन के समग्र अस्तित्व में व्याप्त हो गये हो। सच कहूँ, तो पुरुष की शरीर-गन्ध के साथ वह मेरा प्रथम परिचय था। उस समय उसने मुझे कुछ विलक्षण सी सुखानुभूति से आप्लावित कर दिया था। मैं कुछ क्षण तक अपना चैतन्य खो चुकी थी। नारी और पुरुष की परस्पर अपेक्षा या आकर्षण का ज्ञान तब तक विद्युत्-प्रकाश की भाँति मेरे अन्तरतम में कौंध गया था।

वैसे प्रथम यौवन के स्पर्श की मादक अनुभूति के साथ ही मैं अपने आप में एक विलक्षण बदलाव का अनुभव कर चुकी थी। तभी 'गन्ध' ने उस सुप्त चेतना को एक क्षण के लिये झकझोर कर जगा दिया था। केवल तुम्हारे लिये श्रीमण्डप में निर्मित उस सुसज्जित कक्ष में अकेली होकर भी मैंने अपने चारों ओर एक उमड़ती हुई भीड़ सी अनुभव की। मैं एकमात्र उस भीड़ का आकर्षण-केन्द्र थी। मुझ पर उसने फूल बरसाये और मुझे देखकर वह उल्लसित हो रही थी। सम्पूर्ण जम्बूद्वीप के ललामभूत अवन्तिदेश के महाप्रतापी महाराज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तारापीड़ के सुप्रिय कुमार तुम्हारे इस अलंकृत कक्ष की एकमात्र अधिकारिणी होने का अनुभव मुझे भी कुछ कम उल्लसित नहीं कर रहा था। कुछ क्षण के लिये सचमुच मैं भूल ही गयी कि मैं उस दिन तुम्हारी 'परिचारिका' बनाकर भेजी गयी हूँ। तुमने मुझे 'पाखी' शब्द से सम्बोधित करके मेरे हृदय की तन्त्रियों को हल्के से छेड़ दिया था। उनकी क्षीण झंकृति मेरे तन-मन में तुम्हारी शरीर-गंध की भाँति भर रही थी। किन्तु यह सब कुछ एक स्वप्न मात्र था, जो बड़े सहज भाव से तब टूट गया। तब मुझे अपने परिचारिका होने का ठीक-ठीक अर्थ लगा। तुम्हारे कक्ष की भित्ति पर टँगे महाराजाधिराज के चित्र पर पुनः मेरी दृष्टि पड़ी। मुझे लगा, वे बड़ी तनी हुई दृष्टि से मुझे घूर रहे हैं। वे कुछ मूक वाणी में मुझे सम्बोधित कर रहे हैं, "पत्रलेखे" तू कुमार की परिचारिका मात्र है। कुमार के आकाश जैसे विशाल व्यक्तित्व को अपनी क्षुद्रता में समेटने की भूल करके तू कठिन दण्ड की भागी होगी। अतः पहले से ही सावधान हो जा। कुमार की ओर तेरा अपराधी पहला कदम ही तेरे अस्तित्व को समाप्त कर देने के लिये पर्याप्त होगा" मैं इस भावना के उत्पन्न होते ही प्रकम्प से भर गयी थी।

इसी बीच एक चर ने प्रवेश करके मुझे सूचित किया कि महादेवी विलासवती मुझे बुला रही हैं। मैं उसी समय तुम्हारे कक्ष से निकलकर अन्तःपुर पहुँची। वे मेरी प्रतीक्षा ही कर रही थीं। उन्होंने मुझे अपने निकट बैठाया और बड़े दुलार से पूछा—"पत्रलेखे, कुमार से तेरा प्रथम परिचय कैसा रहा ? वह कैसा लगा तुझे ?" मैंने कहा—"देवि, मेरा परिचय ठीक रहा।" किन्तु तुम मुझे कैसे लगे, इस प्रश्न का उत्तर मुँह से निकलते-निकलते रुक गया। मैं लज्जा और संकोच के मारे गड़-सी गयी। इतना भी नहीं कह पायी कि तुम मुझे अच्छे लगे हो। लगा, महादेवी ने मेरे संकोच का कारण बहुत कुछ समझ लिया और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ हंसकर बोलीं—"पत्नलेखे, तू इतनी लजीली कब से हो गयी ?... अच्छा, यह बता, उसने कुछ तुझसे पूछा ?" मैंने कहा—"कुछ भी नहीं, हां, उन्होंने मेरा नाम ही बदल डाला ! कहने लगे, 'पत्नलेखा' नाम कुछ बड़ा है। उच्चारण में असुविधा होती है। मैं तुझे पाखी कह कर बुलाऊंगा।" सुन कर महारानी जोर से हंसी और बोलीं—"वाह बहुत मधुर नाम रख दिया तेरा उसने" सचमुच तू उसके लिये एक 'पाखी' है, पत्नलेखा ! महादेवी का स्वर गम्भीर हो गया। कहने लगीं—"उसके पास एक सुन्दर चिड़िया की भाँति फुदकती रहे और उसका मनोरंजन करती रहे, इसके लिये ही मैंने तुझे उसके पास भेजा है।" महादेवी इतना कहकर अपने करतल से धीरे-धीरे मेरा सिर सहलाने लगीं। किन्तु एक ही क्षण में मैं किसी अज्ञात भावना के आवेश से भर गयी और अपने को सम्हाल न पाकर उनकी गोद में मुँह छिपा कर रो पड़ी। सम्भवतः महादेवी को मेरी इस स्थिति का कोई पूर्वानुमान न था। वे समझ न सकीं कि बात क्या है। मुझे उहोंने अपने अंक में कस लिया और सम्भवतः मेरे विगत जीवन को याद करके स्वयं विह्वल हो उठीं और वाष्पस्तम्भित स्वर में मुझे देर तक पुचकारती रहीं। मैं कुछ शान्त हुई तो बोलीं—"बेटी, भूल कर भी तू ऐसा नहीं समझना, कि इस संसार में तेरी मां नहीं है, तेरे पिता नहीं है, आखिर हम क्या हैं ! स्वय महाराजाधिराज तेरा ध्यान रखते हैं। कुमार के साथ रहने के लिये हम दोनों ने तेरा चयन किया है। तू परिचारिका अवश्य है, फिर भी तेरा स्थान सामान्य परिचारिका वर्ग से बहुत ऊँचा है। तू हमारे स्नेह का भाजन है। तेरे लिये आज ही कुमार के कक्ष के पार्श्व-भाग में एक कक्ष की व्यवस्था कर दी गयी है। आज सम्भव है कुमार देर रात गये अपने कक्ष में जांय तब तक भोजन करके तू अपने उसी कक्ष में विश्राम करना। आवश्यकतानुसार कुमार की देखभाल करना, उन्हें कब क्या चाहिए, इसका ध्यान तुझे रखना है। आज महामंत्री शुकनास ने उन्हें अपने उपदेश से अनुगृहीत करने के लिये अपने निकट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुला भेजा है। अब कुमार को महाराजाधिराज शीघ्र ही युवराज पद पर प्रतिष्ठित करने वाले हैं। उसके लिये उज्जयिनी में विशेष उत्सव मनाया जाने वाला है। तू युवराज चन्द्रापीड़ की ताम्बूलकरंकवाहिनी के रूप में प्रतिष्ठित होगी !' यह कह कर महादेवी ने मेरे सामने नाना प्रकार के मधुर पदार्थ भोजन के लिये रख दिये और मेरे मना करने पर भी स्वयं अपने हाथ से उठा उठाकर धीरे-धीरे मेरे मुँह में डालती गयीं।

मैं अन्तःपुर से श्रीमण्डप की ओर चल कर अपने कक्ष में पहुँची। तब कुछ रात हो चली थी। सब ओर दीपदण्डों पर दीपक प्रज्वालित किये जा चुके थे। श्रीमण्डप के बीच तुम्हारे कक्ष की खिड़कियों से प्रज्वलित शताधिक दीपों का प्रकाश बाहर तक विकीर्ण हो रहा था। उन वातायनों से अगुरु की मंद-मंद सुरभि भी निकट के वातावरण में फैल रही थी। आकाश बिलकुल स्वच्छ और तारकित हो चला था। पवन मन्दगति से चल रहा था, जिससे दीपों के लौ थरथरा रहे थे। फिर भी उनके बुझने का भय न था। स्थान-स्थान पर रक्षक वर्ग सावधान मुद्रा में खड़े थे। मुझे आते-जाते किसी ने कुछ भी न कहा। मेरे सम्बन्ध में, सम्भवतः सबको यह सूचना मिल चुकी थी, कि मुझे तुम्हारी ताम्बूलकरंकवाहिनी के पद पर नियुक्त किया गया है। द्वार-स्थित प्रतीहारों की मुद्रा मेरे आते-आते कुछ विशेष सावधानी के साथ परिवर्तित हो गयी। मैं उस पर विशेष ध्यान दिये बिना आगे बढ़ गयी। अपने कक्ष में प्रवेश किया तो मेरे सुख-सौविध्य के लिये प्रत्येक सामग्री वहां व्यवस्थित मिली। एक विशाल आदर्श के निकट नाना सुगन्धित तैलों के कई पात्र दिखाई दिये। वहीं कंकतिकाएँ पड़ी थीं। समयानुसार धारण करने के लिये बहुमूल्य वस्त्राभूषण ठीक ढंग से रखे गये थे। मैंने घूम-घूम कर अपने उपयोग की सारी चीजें देख लीं और कुछ साधारण थकान के अनुभव होते ही अपने पर्यंक पर लेट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गयी। लेटे-लेटे तुम्हारी प्रतीक्षा करने लगी। क्रमशः मेरे मस्तिष्क में दिन भर की घटित घटनाएँ उभरती रहीं। तुम्हारे पास वृद्ध कंचुकी महाशय के साथ पहुँचना, उनके द्वारा मेरे परिचय में महादेवी का सन्देश निवेदन करना, तुम्हारा वीणा से ध्यान हटाकर मुझे अपलक निहारना, मेरा अपने ही भीतर संकोच से प्रवेश कर जाने की व्यग्रता को झेलना, फिर भी शान्त खड़े रहना, तुम्हारे द्वारा मेरे नाम का परिवर्तन, उसकी व्याख्या आदि-आदि। सब कुछ आज मुझे अच्छा लग रहा था। किन्तु महादेवी का कथन कि उसके पास एक सुन्दर चिड़िया की भाँति फुदकती रहे और उसका मनोरजन करती रहे, मुझे दूर तक सहज भाव से विद्ध कर गया था। उस समय मैं अपने को सम्हाल न सकी थी। उसी वात की अनुगूंज अब भी मेरे मस्तिष्क में रह-रह कर उभर जाती थी। क्या सचमुच मैं तुम्हारे मनोरंजन का साधन मात्र बन कर रह जाऊँगी ! यह प्रश्न जब मेरे मन में बार-बार उठने लगा। तब मैं अपने पर्यंक से उठ खड़ी हुई और उसे भूल जाने का कुछ असफल प्रयास करने लगी। फिर अपनी व्यवस्थित वस्त्राभूषण सामग्री को अपने ढंग से व्यवस्थित करने में लग गयी। वर्णों में तुम्हें कौन सा अधिक पसंद है, कौन वस्त्र तुम कब धारण करना चाहोगे ? नारी के प्रति तुम्हारा दृष्टिकोण क्या है ? क्या बहुतों की भाँति तुम भी उसे पुरुष के सुख-भोग का साधन मात्र मानते हो ? यह अन्तिम प्रश्न एक प्रकार से उसी पूर्व प्रश्न की शब्दान्तर से पुनरावृत्ति मात्र था, जिसके समाधान की उपलब्धि के अभाव में मैं अपने को भुलावे में डाले जा रही थी। इसी समय बाहर से आकर तुमने अपने कक्ष में प्रवेश किया।

मुझे तुम्हारे आने की सूचना पद-चाप से मिली तो मैं शीघ्र ही पहुँच गयी। तुम्हारी आकृति पर उस समय कुछ गाम्भीर्य का प्रभाव मैंने लक्षित किया। तुम अपनी पर्यंकिका पर बैठते ही बोले—"पाखी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तू ने कुछ खाया-पीया अथवा मेरी प्रतीक्षा ही करती रह गयी ?" मुझे तुम्हारे इस प्रश्न में मेरे प्रति कुछ ममत्व का भाव प्रतीत हुआ। मैंने उत्तर में कहा—"अभी कुछ देर पहले महादेवी ने बुला भेजा था, वहीं मेरा भोजन हो गया है !" तुम बोले—"अच्छा बोल, तू ने क्या खाया है ! मैं भी वैशम्पायन की मां के हाथ से भोजन करके आ रहा हूँ । देखें, किसने अच्छे पदार्थ खाये हैं, मैंने या तूने !" तुम्हारे शब्दों में तुम्हारे स्नेहसिक्त हृदय का सहज उल्लास छलका आ रहा था। तब हम दोनों ने एक-दूसरे के भोजन की तुलना की और दोनों के भोजन अपनी-अपनी जगह पर समान रूप से विशिष्ट सिद्ध हुए। तब हम देर तक इस बात को लेकर हँसते रहे । मैं कल्पना नहीं कर सकती थी कि आज ही प्रथम दिन के परिचय में मैं तुमसे इतना अधिक खुल जाऊँगी । निश्चय ही इसमें तुम्हारे सरल एवं स्वच्छ व्यक्तित्व का चमत्कार कहना ठीक होगा। कहां चक्रवर्ती के पुत्ररत्न तुम और कहाँ मैं अनाथ, तुम्हारी एक परिचारिका, क्रीतदासी ! तब मैंने ताम्बूल के दो बीड़े लगा कर दिये। तुम उन्हें मुँह में रखकर अपने विशाल पर्यंक पर जाकर उपबर्ह के सहारे लेट गये और मुझे वीणा पर कोई धुन छेड़ने के लिये संकेत किया। उस दिन मैं बहुत ही प्रसन्न थी। तुमने मेरे एकाकी जीवन में कुछ इस प्रकार प्रवेश किया था, जैसे ग्रीष्मलुलित किसी वाटिका में कुल्या के माध्यम से शीतलजल का प्रवाह पहुंचता है और शनैःशनैः अपने अस्तित्व द्वारा वाटिका के कण कण को परिताप के कष्ट से उबार लेता है। ठीक उसी प्रकार मेरे अस्तित्व का कण-कण तुम्हारा सान्निध्य पाकर, तुम्हारे स्मितालोकमण्डित मुख के अमृतमय वचनों से अभिषिक्त होकर उल्लसित हो रहा था। उसी उल्लास से प्रेरित होकर मेरी उंगलियां वीणा की तन्त्रियों पर थिरकने लगीं। तुमने अपनी गर्दन से एक लम्बी फूल की माला निकाली और मेरी ओर उछाल दिया, फिर लगा तुम अपनी आंखें बंद करके आनन्द-बिभोर हो रहे थे। वादन समाप्त होने पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने तुमसे निवेदन किया—"क्या इस समय आप कुछ पेय ग्रहण करना चाहेंगे ?" । तुमने कहा—"नहीं पाखी, अब नींद आ रही है । तूने कानों में अमृत उड़ेल दिया है । अब कुछ पीने की इच्छा नहीं । जा सो जा । रात अधिक बीत गयी है । हाँ, मेरे कक्ष के इन दीपों को बुझा दे । इनके प्रकाश में नींद नहीं आ रही है ।" तुम्हारा आदेश पाते ही दो-एक दीपों को छोड़ कर मैंने सभी को बुझा दिया और अपने कक्ष में चली गयी । तुम इतने सुलभनिद्र हो मैंने उसी दिन जाना । उस रात मुझे वस्तुतः नींद नहीं आयी । देर तक नाना व्याकीर्ण चिन्तनों में डूबती-उतराती रही । मुझे लगा था, मैंने आज पूरा दिन एक स्वप्न देखा था । रात के अंधेरे में वह सब कुछ धूमिल हो गया । कहीं दूर पर आकाश में चन्द्र के उदित होने का अनुभव हुआ । मेरे निकट के वातायन से, क्षीण-सी ज्योत्स्ना प्रवेश कर रही थी । क्या मेरे जीवन की अंधेरी कोठरी में भी कोई चन्द्र उदित हुआ था ?

मैं अनजाने ही तुम्हारी कोठरी से निकल कर आते हुए वह माला उठा लायी थी, जिसे तुमने वीणा-श्रवण के प्रसंग में मेरी ओर उछाल दिया था । उसे मैंने अपने पर्यंक पर सिरहाने रख छोड़ा था । उससे भीनी-भीनी सुरभि का कभी-कभी अनुभव हो जाता था । वह एक महा-स्रज थी, मालती के फूलों की बनी हुई । समय के अन्तराल के कारण वह अब तक अधिक म्लान हो चुकी थी । तब भी उससे उस मालाकार की कला का अनुमान लगाया जा सकता था, जिसने घंटों श्रम करके तुम्हारे लिये तैयार किया था । राजकुल में लगभग प्रतिदिन एक उत्सव का-सा वातावरण बना रहता है । फूलों और मालाओं की ढेर-सी लग जाती है , मैं देर तक सोचती रही कि उज्जयिनी के कितने लोग केवल राजकुल में फूलों की मालाएं तैयार करने के व्यापार के रात-दिन समर्पित भाव से संलग्न होंगे ! धीरे-धीरे मेरा ध्यान राजकुल की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समग्र व्यवस्था को लेकर जब केन्द्रित हुआ तब मुझे कुछ-कुछ शिरोवेदना का अनुभव होने लगा। वह सब कुछ सचमुच मेरी क्षुद्र बुद्धि के लिये चिन्तनीय नहीं था। मुझे अपनी सीमा में रहकर ही सोचना चाहिए और तब ऐसा लगा उस सम्पूर्ण महाव्यवस्था का मैं एक नितान्त क्षुद्र अंश हूँ।

मैंने देखा था, तुम्हारे राजकुल की उस महती व्यवस्था में सहस्रों की संख्या में लोग समर्पित थे। उनका सबसे पहला धर्म था, मूक सेवा। अपनी सीमा में ही संयत एवं विनीत वाग्व्यवहार छोटे तथा बड़े सभी प्रकार के पदों पर प्रतिष्ठित व्यक्तियों में मैंने अनुभव किया था। किन्तु इसे मैं अपना दुर्भाग्य मानूँ या सौभाग्य, मैं कुछ उस सीमा से अपने को बाहर अनुभव करने लगी थी। वैसे भी मैं महादेवी का सहज स्निग्ध वात्सल्य प्राप्त करके प्रगल्भ हो चली थी। तुमने मेरी प्रगल्भता पर पड़े कुछ अतिरिक्त विनय के आवरण को हटा दिया था। अपने सहज कोमल व्यक्तित्व की अतल गहराई में प्रवेश का अवसर देकर जिस प्रकार तुमने अपने भीतर मुझे प्रवेश पाने की अनुमति दी थी ठीक उसी प्रकार तुम मेरी अन्तर्व्यथा की गहराई में भी दूर तक गोता लगाने लगे थे, ऐसा अनुभव उस एकान्त रात्रि में बार-बार मुझे होता रहा।

वह रात बीत गयी और इस प्रकार तुम्हारी छाया के रूप में साथ रहते मेरे अनेक दिन और रातें बीतीं तो लगा मेरे जीवन की वाटिका में सब ओर हरियाली-सी छा गयी है। विभिन्न मार्गों से उसमें शीतल जल-प्रवाह आने लगा है। जैसे सब ओर वसंत का दृश्य दृष्टिगोचर होने लगा। फूल ही फूल, सुरभि ही सुरभि। कहीं कचनार तो कहीं पाटल, कहीं भौंरों की गूंज से भरे कमलालंकृत तडाक, कहीं महमहाते हुए मंजरित रसाल वृक्ष और उन पर बैठे आरक्त नेत्रों वाले कोकिलों के कषायकण्ठ की मधुर ध्वनि! यह सब कुछ मेरे एक अपने जीवन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में अनुभव होने लगा था। किन्तु जब किसी-एक क्षण अनुभव हुआ कि इस वाटिका में फूलों से लदे अनेक वृक्ष कांटेदार हैं और इनमें किसी समय पतझड़ की उदासी छा सकती है तब कुछ विचित्र-सा लगा था। उस समय मेरा कण्ठ सूखने लगा था। आँखों के निकट अज्ञात से धूमवितान उभरने लगे थे। मैं समझ नहीं पायी कि, ऐसा क्यों हो गया।

तुम्हारे यौवराज्याभिषेक की घोषणा आधिकारिक ढंग से की जा चुकी थी, जिसकी सूचना तुम्हारे परिचय के प्रथम दिन ही मुझे महादेवी ने दे दी थी। उपकरणों के संग्रह के लिये प्रतिहारों की दौड़-धूप क्रमश: तेज होती जा रही थी और तुम थे कि जैसे तुम पर उसका कोई प्रभाव ही न था। नित्य के समान तुम यथा-समय अपने मित्रों के साथ व्यायामभूमि को जाते। सविधि स्नान-भोजन और विश्राम करते। मैं तुम्हारी छाया बनकर अब सतत तुम्हारे साथ रहने लगी थी। मुझे सबने निकट से पहचान लिया था। कभी किसी महत्व के विषय पर तुम्हारी स्वीकृति लेनी होती तो अधिकृत लोग मुझे कहने के लिये प्रेरित करने लगे थे। धीरे-धीरे तुम्हारे स्वभाव का मुझे पूरा परिचय मिलने लगा था। तुम कब कैसा परिधान पसंद करते हो, कैसे अलंकरण तुम्हें अच्छे लगते हैं इसकी जानकारी मुझे हो चली थी। किन्तु कुछ दिन और बीते तो मैंने देखा कि अपने लिये उचित वस्त्रा-भूषणों के चयन की चिन्ता तुम मुझ पर ही छोड़ने लगे थे। निःसन्देह इससे तुम्हारे मन में मेरी प्रतिष्ठा लक्षित हो रही थी। पर इस प्रतिष्ठा में अपने लिये त्रुटि की सम्भावना के कारण भय का भी अनुभव होता। कहीं ऐसा न हो कि मेरे अपने निर्णय के अनुसार तुम्हारे द्वारा धारण किये गये वस्त्राभूषणों पर तुम्हारे किसी मित्र द्वारा टोका-टोकी होने लगे। इस परिस्थिति में मेरी क्या दशा होगी ? मैं प्रत्येक क्षण, किसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार के निर्णय लेने में अत्यधिक सावधान रहने लगी थी। जब तुम मित्रों के बीच बैठ कर किसी प्रकार की क्रीड़ा से अपना मनोरंजन करते तब मैं अपने एकान्त कक्ष से तुम लोगों की बातें सुना करती। तुम परस्पर हास-परिहास में किसी से पीछे नहीं रहते।

तुम्हारे अभिन्न सखा वैशम्पायन का भी मुझ पर कुछ कम अनुग्रह न था। उन्होंने जब कभी अकेले में अथवा मेरे सामने मेरी प्रशंसा की तो तुम प्रायः स्वीकृति की मुद्रा में मुस्कुरा पड़ते थे। मेरी प्रशंसा के उत्तर में तुम्हारे पास उस मुस्कान से बढ़कर और कुछ भी देय पुरस्कार न था। मैं उस समय अपने भीतर दूर तक उल्लास से भर जाती, ठीक तुम्हारे कक्ष द्वार के सामने वाले उस छोटे कचनार वृक्ष की भाँति, जो आपादमस्तक खिले फूलों से लहलहा उठता है। मैं तुम्हारी उन मुस्कानों को ही अपनी स्थायी सम्पदा मानने लगी थी।

एक बार मुझे स्मरण है, तुम और तुम्हारे सखा वैशम्पायन, दोनों पर्यंकिका पर बैठे पासों से खेल रहे थे। मुझे भी तुमने क्रीडाविनोद में सम्मिलित कर लिया था। मैं राजकुल में बचपन से रहने के कारण अक्षक्रीडा में निपुण थी, किन्तु यह बात तुम दोनों को विदित न थी। मैंने पहले जब अपने साधारण ज्ञान का परिचय दिया, तो तुम दोनों ने मुझे खूब मूर्ख बनाया। किन्तु जब मैंने कुछ देर बाद तुम दोनों को अपनी कला से मात देना आरम्भ किया तो तुम मेरी बुद्धि पर अवाक् रह गये थे। अन्तिम बाजी इस पर लगी कि यदि तुम हार जाओगे तो अपनी होने वाली महिषी का मेरे निर्णय से चयन करोगे, और जब हम खेले तो वह विजय भी मेरे पक्ष में रही। तब तुमने सुहृद वैशम्पायन के समक्ष मुझे वचन दिया था।

वह शुभ दिन उपस्थित हुआ। तुम्हारे यौवराज्य-अभिषेक की तैयारी पूरी हो चुकी थी। उस दिन के उत्सव में सम्मिलित होने के लिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनेक देशों के राजा हजारों की संख्या में उज्जयिनी पधार चुके थे। उनके ठहरने की अलग-अलग व्यवस्था थी। उनके देशाचार के अनुसार उनके स्वागत-सत्कार का भी प्रबन्ध महाराजाधिराज की ओर से किया गया था। प्रत्येक के साथ सैकड़ों परिजन भी आये थे और उनके द्वारा अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार लाये गये उपायनों को जब एक स्थान पर सजाया गया तो मैं उन्हें देखकर देर तक आश्चर्य-चकित रही। मैंने एक विश्वस्त चर को भेज कर पता लगाया कि कोई कुलूत देश का भी अधिपति आया है अथवा नहीं, तो विदित हुआ उस देश के अधिपति के मारे जाने के पश्चात् स्वयं महाराजाधिराज का ही वहाँ शासन चलता है। वहाँ से कुछ लोग अवश्य आये हैं, किन्तु उनकी स्थिति इस भीड़ भरे उत्सव में नगण्य है। मैं इस समाचार से एक क्षण के लिये अवश्य उदास हो गयी। फिर अकस्मात् निनादित दुन्दुभिध्वान ने मेरे ध्यान को आकृष्ट कर लिया। क्योंकि वह उत्सव के आरम्भ का सूचक था।

उस दिन दिशाएँ खुली धूप में स्नान कर रही थीं। आकाश स्वच्छ और निर्मल था। राजकुल के वातावरण में फूलों तथा सुरभित धूम-वितान का मनोरम दृश्य था। प्रतीहारों की व्यस्तता देखकर आश्चर्य होता था। आगन्तुक राजगण एवं राजकुल के लोग अपने-अपने अनुसार सजधज कर निकल रहे थे। मैंने भी अपने को खूब अलंकृत किया था। बहुत कुछ राजकुमारी ही लग रही थी। जब तुम्हें स्नान कराने के लिये अदेश मिला तो तुम्हारे साथ मुझे भी चलने का संकेत किया गया। एक बड़े सुसज्जित मण्डप में तुम रत्न-चतुष्किका पर स्नान के लिये बैठाये गये और मैं कुछ दूरी पर बैठ कर तुम्हें अपलक निहारती रही। चारों ओर तुम्हारे अभिषेक का दृश्य देखने के लिये उपस्थित राजसमूह में हर्षोल्लास का अभूतपूर्व प्रसंग था। सबकी आँखें तुम पर पड़ रही थीं। उसी समय पुरोहितमण्डली ने वैदिक मन्त्रों का सस्वर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उच्चारण आरम्भ किया और महाराजाधिराज को वह मंगलकलश उठाने के लिये प्रेरित किया जिसमें सभी पवित्र तीर्थों, सभी नदियों तथा सभी सागरों से जल लाकर डाले गये थे। साथ ही उनमें सभी औष-धियां, सभी फल, सब प्रकार की मिट्टी और सभी रत्न भी डाले गये थे। उस मंगल-कलश को अपनी विशाल भुजाओं से उठाकर जब महाराजाधिराज ने शनैः-शनैः तुम्हें स्नान कराना आरम्भ किया तो उनकी आँखें आर्द्र हो उठी थीं। मैंने प्रथम बार उनकी आँखों में उस प्रकार आर्द्रता देखी तो भीतर से भर उठी। मैंने उनके सम्बन्ध में यही सोच रखा था कि वे अपनी तनी हुई भौंहों से ही देखा करते हैं, किन्तु तब मेरा भ्रम दूर हुआ। महादेवी अपनी सम्पूर्ण परिचारिकाओं के के साथ इस दृश्य को बहुत ही स्निग्ध दृष्टि से देख रही थीं। जाने कितने समय की प्रतीक्षा के बाद तुम्हारे पिता-माता के लिये वह शुभ दिन आया था ! लग रहा था, वे दोनों ही अपने समग्र अस्तित्व के साथ तुम पर निछावर हो रहे थे। उस मांगलिक अभिषेक के जल में हज़ारों उपस्थित संभ्रान्त नर-नारियों के आशीर्वाद और शुभकामनाओं का भी सम्मिश्रण था। मैं भीतर से तुम्हारे उस स्नान के शैत्य का अनुभव करके रोमांचित हो रही थी। किन्तु बाहर से कुछ गम्भीर ही बनी रही।

अभिषेक के जल से आर्द्र तुम्हारे शरीर पर राजलक्ष्मी महाराजा-धिराज के शरीर से कुछ इस प्रकार अभिसरण करती प्रतीत हुई जैसे कोई लता एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर संक्रान्त होती है। स्नान से तुम्हारी निखरी हुई अंग-कांति उस समय एक विलक्षण ही आकर्षण उत्पन्न कर रही थी। इसके पश्चात् महादेवी की बारी आयी, जो अपने समस्त अन्तःपुर के परिजनों से परिवृत बैठी थीं। उन्होंने तुम्हारे अगों पर स्वयं अपने हाथों से सुरभित श्वेत-चन्दन का द्रव लगाना आरम्भ किया। उनका मातृ-स्नेह उस समय भीतर से उमड़ता-सा लग रहा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था। तब तुम्हारे सिर को उज्ज्वल विकसित पुष्पों के किरीट से अलंकृत किया गया। गोरोचना से क्षुरित होकर तुम्हारी भुवन-मोहन अंगकान्ति और भी निखर रही थी। फिर तुमने दूर्वाप्रवाल का बना कर्णपूर धारण किया। चौड़ी किनारीवाले अखंडित, चन्द्र जैसे धवल दुकूल-युगल पहने। पुरोहित ने तुम्हारे हाथ में रंगीन रक्षा-सूत्र बाँध दिया। जब तुम्हारे गले में हार डाला गया तो लगा, तुम्हारे अभिषेक का उत्सव देखने के लिये उस हार के रूप में सप्तर्षियों का मण्डल पहुँच गया है। श्वेत पुष्पों की मालाओं से तुम्हें ढंक दिया गया था। इस प्रकार की तुम्हारी धवलिमा से उद्भासित अभिजात कान्ति को देखकर कभी तो कैलास पर्वत का, कभी ऐरावत का तो कभी क्षीर समुद्र का मुझे ध्यान आता। मैं यहाँ तुम्हारा कुछ भी अतिरंजित वर्णन नहीं कर रही हूँ। वस्तुतः तुम मेरी दृष्टि में साक्षात् कामदेव लग रहे थे, केवल तुममें इतनी कमी रह गयी थी कि तुम्हारे हाथों में फूलों के बाण नहीं थे। तुम्हारे अपरूप लावण्य से अभिभूत होकर भी मैं तत्काल अविकम्प भाव से केवल तुम्हें निहारती रही और केवल यह प्रतीक्षा करती रही कि एक बार भी तुम्हारी दृष्टि उस समय मुझ पर पड़ जाती! जाने क्यों, मेरा अन्तरतम उसी समय तुम्हारे दृष्टिपात के प्रसाद के एक कण के लिये तरस उठा था। किन्तु तुमने मेरी ओर भूल कर भी दृष्टि नहीं फेरी, जब कि मैं तुमसे कोई बहुत दूर भी नहीं बैठी थी। कभी-कभी मनुष्य के साथ ऐसा नियति का क्रूर परिहास देखा गया है, कि जिस वस्तु के लिये जितना ही वह अधिक लालायित हुआ है उतना ही उस वस्तु से वंचित कर दिया गया है। उस क्षण कुछ दिनों के तुम्हारे साथ निवास तथा निकट परिचय के कारण मेरे मन में तुम्हारे प्रति उद्भिन्न ममत्व का अंकुर कुछ-कुछ टूट कर अनेक टुकड़ों में बिखरता हुआ-सा लगा था। किन्तु सम्भवतः वह मेरा भ्रम था। क्योंकि जब भी एक बार नारी अपने मनमें किसी पुरुष के प्रति ममत्व का भाव अनुभव करती है तब वह अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन और प्राण के सम्पूर्ण संवेग के साथ अर्पित हो जाती है। उसके मन का अर्पण उसके समग्र अस्तित्व के कण-कण में जड़ें फैला देता है। भले ही वह मात्र व्यथा बनकर काँटे की भाँति उसके हृदय में आजीवन चुभता रहे।

जब तुम पूर्णतया सज गये तब तुम्हें सुवर्णमय सिंहासन पर बैठाया गया। ठीक उस समय मेरु-पर्वत के शिखर पर विराजमान चन्द्र का दृश्य लग रहा था। तुम्हारी दृष्टि अब अपने समक्ष उपस्थित सम्भ्रान्त जन-समुदाय पर पड़ रही थी। मैं तब तुमसे कुछ दूर हो गयी थी, फिर भी तुम चाहते तो मुझे, सबसे निरीह मुझे एक बार वहाँ से अवश्य देख लेते। उस दिन तुम अवन्ति-देश के युवराज के पद पर प्रतिष्ठित थे, और मैं थी तुम्हारी एक क्षुद्र दासी, कितनी दूरी थी मुझ में और तुममें! वस्तुत: मेरा वह पागलपन ही था जो तत्काल मैंने तुम से ऐसी अपेक्षा कर ली थी। शायद तुम अपने सम्बन्ध में, अपनी महत्ता के सम्बन्ध में जितने सावधान थे, उतनी मैं न थी। हो भी कैसे सकती थी! मुझे उस प्रकार की शिक्षा भी कहाँ मिली थी?

ठीक इसी समय एक वृद्ध कंचुकी मेरे निकट आ गये और धीरे से मेरे कानों में संकेत कर गये कि मुझे यहाँ से चलकर राजकुल के द्वार पर खड़ी सजी हुई करेणुका पर बैठना है, जिस पर आरूढ़ होकर कुमार अवन्ति-देश के प्रजा वर्ग को अपने दर्शन-दान से कृतार्थ करेंगे। मुझे यह सूचना पहले ही प्राप्त थी, किन्तु उस समय मैं बिलकुल ही भूल गयी थी। मैं यह संकेत पाकर धीरे से खड़ी हुई और उनके साथ राज-कुल के द्वार की ओर चली आयी। मेरे वहाँ पहुँचते ही हजारों की संख्या में खड़े दर्शनार्थी लोगों की आँखों में एक जिज्ञासा का भाव तैरने लगा। हस्तिपक का संकेत पाते ही मस्त करेणुका बैठ गयी और तब मुझे उस पर आरूढ़ होने में देर न लगी। तुम्हारे लिये उस पर स्थापित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक विशेष आसन से कुछ अलग हट कर मैं बैठी और अब तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। जब तुम भीतर से शनैः शनैः बाहर आये तो दर्शकों ने एक स्वर से तुम्हारी जय-जयकार से आकाश को निनादित कर दिया। तुम्हारा चित्रमय गोरोचनातिलक से अंकित ललाट सूर्य की आभा में और भी दीप्त हो रहा था। निश्चय ही वहाँ दूर से आते हुए तुमने मुझे देख लिया था! तुम्हारा वह देखना मेरे लिये चिरप्रतीक्षित होने के कारण कितना पुलककारी रहा होगा, तुम स्वयं कल्पना कर सकते हो। लू में मुर्झाती किसी टहनी को जैसे अचानक शीतल मन्द पवन का स्पर्श मिल गया हो! जब तुम करेणुका पर आरूढ़ होने लगे तब मैं स्वभावतः कुछ त्वरित हुई। उस समय बहुत धीरे से तुमने त्वरित न होने के लिये संकेत किया था। तब अपने परिजन पर तुम्हारी अहैतुकी कृपा की कल्पना से प्रजा-वर्ग उल्लसित होकर पुनः तुम्हारी जय-जयकार करने लगा। कुछ क्षण के लिये मेरे मन में तुम्हारे प्रति एक क्षुद्र-सी आशंका अंकुरित हो गयी। क्या तुमने यह कुछ अभिनय तो नहीं किया, केवल प्रशस्ति पाने के लिये? किन्तु यह आशंका देर तक नहीं रह सकी। मैंने अनुभव किया कि तुम्हारे साथ उस करेणुका पर बैठी मुझे देखकर उज्जयिनी के हजारों नर-नारी मेरे भाग्य की सराहना कर रहे हैं। यह सौभाग्य भी तुम्हारी सहज अहैतुकी कृपा का ही तो परिणाम था! उस समय तुम अपने प्रजा-वर्ग का अभिवादन स्वीकार कर रहे थे। तुम पर फूलों और धान के लावों की वर्षा हो रही थी। मैंने देखा, मेरे आस-पास भी फूलों और लावों की ढेर-सी लग गयी थी। यह प्रसंग कुछ देर तक चला। तब मैंने देखा, सैनिकों ने लोगों की भीड़ को हटाना आरम्भ कर दिया। करेणुका बैठ गयी और तुम उससे उतर गये। तुम्हारे पीछे मैं भी उतर गयी और तुम्हारे साथ राजकुल में प्रवेश किया।

समय के इसी अन्तराल में तुम्हारी दिग्विजय-यात्रा का सूचक प्रस्थान-दुन्दुभि बज उठा। सेनापतियों का तुमसे परिचय कराया गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजकुंजर गन्धमादन और इन्द्रायुध जैसे वाहनों से सम्पन्न तुमने पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया था। तुम्हारे पीछे तुम्हारी सेना कलकल नाद करती चल पड़ी। इसी समय दूसरी एक करेणुका पर सवार होकर तुम्हारे परमसखा वैशम्पायन अपने भवन से निकल कर आ गये और तुम्हारे साथ हो लिये। तुम्हारी दिग्विजय यात्रा का विस्तृत वर्णन करना मेरा यहाँ लक्ष्य नहीं। मैं तुम्हारे साथ थी और सोच रही थी, यह सब क्या होने लगा है! आखिर पृथ्वी पर कौन-सा ऐसा देश है, जनपद है, जिस पर तुम्हारे पिता महाराजाधिराज की विजय-पताका नहीं फहरा रही हो! फिर भी तुम दिग्विजय के लिये प्रस्थान कर रहे हो! यह सम्भवतः तुम्हारे कुल की परम्परा रही हो कि जो भी युवराज के पद पर प्रतिष्ठित होता है वह दिग्विजय के लिये प्रस्थान करता है। यह ठीक है, किन्तु विजित पर विजय की बात मेरी समझ में नहीं आ रही थी। यह प्रश्न मेरे ही मन में उस समय उदित नहीं हुआ था, बल्कि तुम्हारे मित्र वैशम्पायन ने भी तुमसे इसी प्रकार के प्रश्न किये थे- "युवराज, महाराजाधिराज देव तारापीड़ ने क्या विजित नहीं कर लिया, जिसे आप वश में करेंगे! कौन-सी दिशाएँ या दुर्ग या द्वीपान्तर उन्होंने आत्मसात् नहीं कर लिये! कौन-से रत्नों का उपार्जन उन्होंने नहीं किया! कौन-से राजा उनके सामने नहीं झुक गये! किसने उन्हें मस्तक झुका कर सेवांजलि अर्पित नहीं की! किसने हेमपट्ट युक्त अपना मस्तक उनके सामने नहीं टेका! किसने अपनी चूड़ामणि से उनके पादपीठ का स्पर्श नहीं किया! किसने उनके ऊपर चँवर नहीं डुलाया! किसने जय-शब्द का उच्चारण नहीं किया! किसने मकरालंकृत अपने किरीटों को उनके चरणों में नहीं झुकाया!"

इन प्रश्नों को सुनकर तुम उत्तर में मात्र हँस पड़े थे और आगे की यात्रा पूरी करने में व्यस्त हो गये थे। मैंने तुम्हारी उस हँसी में अपने मित्र के प्रति कुछ "उपेक्षा" का भाव-सा अनुभव किया था और मन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही-मन खिन्न हुई थी। क्या तुम भी उन्हीं जड़ परम्पराओं को ढोते रहने में अपनी सफलता समझते हो, जो मानवता को त्रस्त तथा पद-दलित करने के उद्देश्य से निर्मित हुई थीं ! क्या तुम उन्हीं शासकों में नामांकित होना पसन्द करते हो, जो राज्यविस्तार द्वारा अपने क्षुद्र अहं की पूर्ति मात्र करते और उसके हो जाने पर प्रसन्न होते हैं ! विधाता ने तुम जैसे शासकों को इस धरित्री पर क्या इस लिये उत्पन्न कि है कि उनके द्वारा निर्मित सहस्रों मनुष्यों का, तुम केवल अपना पराक्रम प्रदर्शित करने के लिये अपने क्रूर शस्त्रास्त्रों के प्रहार से बध कर डालो ?" आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि" का तुम्हारा आदर्श कहाँ गया ? मैं कुछ क्षण के लिये भावाविष्ट-सी हो गयी। सोचा, दौड़कर तुम्हारे मार्ग में लेट जाऊँ और कहूँ कि या तो तुम इस व्यापार के विरत हो जाओ या मेरे शरीर को तुम्हारे हाथी और घोड़े रौंदते हुए निकल जायें ! फिर जाने क्या सोचकर मैं रुक गयी।

फिर मैंने देखा कि तुम्हारी सेना जिस मार्ग से चली उसे तथा उसके निकटवर्ती गाँवों को तहस-नहस करके छोड़ दिया। घोड़ों के खुर-पुटों से उड़ी धूल आकाश में छा गयी और हाथियों के मदजल की वर्षा से एक विचित्र सी गन्ध चारों ओर फैल गयी। नगाड़ों और दुन्दुभियों की तीव्र ध्वनि से कान फटे जा रहे थे। आस-पास की हरित कृषि नष्ट हो गयी और ग्राम्य जन सन्त्रास से भर उठे। महाप्रलय का दृश्य कोई इससे भिन्न नहीं होगा। उस विकराल दृश्य का स्मरण करके आज भी मेरा मन व्याकुलता अनुभव कर रहा है। निश्चय ही, तुम्हारे बल-दर्प की, चारणों और कवियों ने प्रशस्तियाँ सुनायीं और तुम उन्हें सुन कर मुदित हुए। किन्तु मैं प्रायः भीतर-ही-भीतर व्यथित हुई। मैंने तुम्हें एक बार मृगया के लिये वन की ओर जाकर नाना निरीह पशुओं की हत्या करके उनके मृत शरीरों को लाते हुए देखा था और अब तुम एक दूसरे प्रकार की मृगया में निकले थे, जिसमें अधिकतर मनुष्यों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हत्या करना तुम्हारा लक्ष्य था। क्या वह सब निर्दय व्यापार किसी शास्त्र या पुराण में राज-धर्म के रूप में वर्णित है, जिसे तुम किये जा रहे थे ?

तुम्हारे प्रति रोष से भरा होने पर भी मेरा मन एक विलक्षण-सी आर्द्र भावना से अभिभूत था। तुम्हें मैंने एकान्त शिविर में दिन भर की यात्रा से थक कर चूर निद्रित अवस्था में बहुत निकट से देखा है और शय्या के निकट लटकती हुई तुम्हारी तलवार पर भी मेरी दृष्टि पड़ती रही है जिसने कितने ही प्राणियों को मार डाला था। वह तलवार सम्भवत: तुम्हारे पिता ने अपने आशीर्वाद के साथ तुम्हारे हाथ में सौंपी थी, जिसे वे अपनी दिग्विजय-यात्रा में व्यवहार में ला चुके थे। हो सकता है, इसी से उन्होने कुलूत-देश के अधिपति मेरे पिता की और उनकी पट्टमहिषी मेरी माता की हत्या की थी ! मैं इस कल्पना से एक रात अत्यधिक विकीर्ण हुई और निर्णय ही ले लिया कि तुम्हें पेय पदार्थ में कुछ मिला कर पिला दूँगी और स्वयं पी लूँगी। किन्तु जब तुम्हें अपने सखा के साथ अचेत अवस्था में गहरी नींद का सुख लेते देखा और तुम्हारे पुष्ट अंग-प्रत्यंग पर दृष्टि डाली तो मैं स्वयं को ऐसे निर्णय पर कोसती रही। जाने क्यों, तुम्हारे प्रति मेरे मन में उदित कोई अन्यथा भाव देर तक नहीं रह पाता था। तुमने अपने सुकोमल, हाँ सुकोमल ही कह सकती हूं, व्यवहारों से, मृदु मुस्कानों से मुझे अभिभूत कर लिया था। मैं मन्त्र-मुग्ध सी तुम्हारे अनुगत होने के लिये बाध्य थी। वैसे परि-चारिका के रूप में तुम्हारी अनुगता तो थी ही।

मैं आज भी सोच रही हूं, तुम्हारे प्रति मेरे मन के उस आकर्षण में कोई क्षुद्र काम का सम्मिश्रण नहीं था। मैं अवश्य एक युवा नारी के रूप में तब तक विकसित हो चुकी थी। मेरे अंग-प्रत्यंग राजकन्या की गरिमा और अपरूप लावण्य से दीप्त थे और उनकी दीप्ति आज भी वही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निश्चय ही तुमने भी मेरी ओर किसी प्रकार की क्षुद्र लालसा भरी दृष्टि से नहीं देखा। यह मेरे पक्ष में तुम्हारे प्रति अपने आकर्षण का एक पावन प्रसग था। किन्तु जाने क्यों, अपने भीतर कभी-कभी उस आकर्षण में एक ज्वार की सी ऊष्मा और व्याकुलता का अनुभव करने लगी थी और चाहने लगी थी कि तुम भी कुछ ऐसे ही मेरे प्रति आकर्षण से भर जाओ। किन्तु तुम्हारी ओर से कुछ भी ऐसा प्रतिफल न पाकर मैं घबरा उठती थी। यह घबराहट एक अतृप्ति अथवा पिपासा के रूप में मेरे मन में उभर चुकी थी, जो किसी प्रकार शान्त नहीं हो रही थी। आज भी मैं कुछ अतृप्ति या पिपासा से ग्रस्त होकर तुम्हें यह पत्र लिख रही हूं। मैं कुछ भी बदली नही हूं, हो सकता है, तुम मेरे प्रति वह नहीं रह गये हो। अथवा, मैंने कभी-कभी तो महासागर की भाँति तुम्हारे व्यक्तित्व को अथाह ही अनुभव किया है। तुम सचमुच क्या हो, मेरी समझ में आज तक नहीं आ सका है।

मैं उस रात शिरोवेदना के कारण सो नहीं पायी। तुम्हारे शिबिर के ही साथ लगी एक छोटी मण्डपिका में "कुथ" के शयन पर लेटी तड़फड़ा रही थी। ऐसा लगा मेरी ओर से अपनी सेवा में कुछ शैथिल्य का अनुभव करके तुमने मेरी पीड़ा का अनुमान लगा लिया था। बिना किसी आहट के तुम मेरे पास आ गये थे। तुम्हारे मित्र अपने पर्यंक पर निद्रित थे और लगभग मध्य रात्रि का समय था। मैंने अचानक अपने पास तुम्हें खड़े पाया तो घबरा कर उठ बैठी और जिज्ञासा-भरी दृष्टि से तुम्हें देखने लगी। तुमने पूछा था—"पाखी, क्या तुझे कुछ पीड़ा हो रही है? मैंने कहा—"हाँ, कुछ शिरोवेदना है, कुछ देर में ठीक हो जायगी, आप चिन्ता न करें!" तुम बोले—"नहीं, पाखी, तू दुखी रहे और मैं विश्राम करूं?" तुम्हारा अन्तिम छोटा ही वाक्य लगभग मुझे दूर तक घायल कर गया था। हाय, तुम्हारे बोलने में कितना भोलापन था! मेरा गला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हारे इस भोले अनुराग के क्षणिक स्पर्श की अनुभूति से भर आया था। किसी प्रकार मैं बोल सकी थी——"नहीं, कुमार, आप ऐसा क्यों करेंगे। मैं स्वयं कर लूंगी।" किन्तु मेरी कही तुमने एक न मानी और स्वयं अपने शिबिर में जाकर तेल लाये और मेरे सिर को अपने जानुदेश पर रखकर बहुत धीरे-धीरे तेल छोड़ा और दबाने लगे। मेरी शिरो-वेदना उस प्रक्रिया से अवश्य कुछ कम हुई, किन्तु मुझे तुम्हारे स्पर्श से जो सुखानुभूति हुई उसकी मैं कल्पना नहीं कर सकती थी। एक प्रतापी युवराज एक क्षुद्र परिचारिका का स्वयं परिचारक बन गया था! इस घटना की मैंने कभी सम्भावना नहीं की थी। मैंने अपने अन्तरतम में तुम्हारे प्रति एक गहरी स्निग्ध भावना का अनुभव तो किया ही, किन्तु मेरे मन में तुम्हारे प्रति जो घृणित भाव तुम्हारी इस विजय-यात्रा के प्रसंग में उदित हुआ था और तुम्हारे पर्यंक के पास लटकती हुई तलवार को देखकर जो कर डालने का विचार आया था उसके लिये मैं लज्जित हो रही थी।

तब मैंने जानबूझ कर धीरे-धीरे अपने नेत्र निमीलित कर लिये और निद्रित होने लगी। मैं कुछ इस प्रतीक्षा में थी कि तुम कुछ ही क्षणों में मेरे ईषदुष्ण रक्तिम कपोलों को छुओगे और एक चुम्बन का आर्द्र स्पर्श देकर अपने शिबिर में चले जाओगे। किन्तु ऐसा तुमने कुछ भी नहीं किया। भूल कर भी तुम्हारे हाथ मेरे उत्तप्त शरीर के किसी भाग की ओर नहीं बढ़े। जब तुमने समझ लिया कि मैं गहरी नींद में खो चुकी हूं तब तुमने शनैः-शनैः मेरे मस्तक को अपने जानुदेश से उतारा और उसी प्रकार बिना किसी आहट के चल दिये। मैंने तुम्हें जाते हुए अर्ध निमीलित नेत्रों से देखा और इस प्रतीक्षा में देखा कि तुम एक बार भी जाते हुए मुड़ कर मुझे देख लोगे। किन्तु तुमने नहीं देखा। तुम सोच सकते हो कि मैं उस रात कितनी उद्विग्न रही। एक तो अपने सिर पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हारे हाथों का दबाव, दूसरे तुम्हारे मन में अपने प्रति इतनी अनासक्ति का भाव, दोनों ही परस्पर विरोधी लगे और मैं दोनों को गहराई तक पहुंच कर भी न समझ पाने की अपनी अक्षमता के कारण अतिशय व्याकुल हो उठी। क्या तुम दिन के हजारों क्रूर योद्धाओं के साथ अपने शत्रुओं पर सिह की भाँति टूट पड़ने वाले प्रबल प्रतापी युवराज चन्द्रापीड़ और रात के मुझ क्षुद्र दासी के एकान्त कक्ष में आकर बड़े भोलेपन से सिर दबाकर चले जाने वाले कुमार, दो थे अथवा एक, यह मैं देर तक निर्णय नहीं कर पायी।

जब मैं प्रातःकाल अपने शयन-कक्ष से तुम्हारे शिविर में पहुँची तो तुक अधिक उद्विग्न प्रतीत हुए। अपने वक्ष पर स्वयं कवच बाँधते हुए तुमने मुझसे कहा——'पाखी, शीघ्र तैयार हो जा, तुझे और अन्य सभी परिचारिकाओं को एक निकटवर्ती सुरक्षित ग्राम में पहुँचाने की व्यवस्था कर चुका हूं। अभी विदित हुआ है, एक प्रबल शत्रु सामन्त ने हमारे शासन में रहना स्वीकार नहीं किया और वह अपनी सेना लेकर हमारी ओर बढ़ा आ रहा है। उसे मुँह-तोड़ उत्तर देना है।" मैं यह सुनते ही नीचे से ऊपर तक दहल गयी। कहीं ऐसा न हो, तुम्हें अनभीप्ट आपदायें घेर लें। उस समय तुमसे मैं कुछ कहूं, ऐसा न तो मेरी सीमा के अनुकूल था और न तुम्हारे पास किसी की कुछ भी सुनने के लिये समय था। ऐसा लग रहा था, तुममें कोई विद्युत् की-सी स्फूर्ति आपाद-मस्तक भर गयी है और तुम अपने शत्रु पर टूट पड़ने के लिये विकल हो रहे हो। तुम्हारा संकेत पाकर जब तुम्हारे कक्ष से बाहर निकली तो देखा, तुम्हारा इन्द्रायुध सजा-धजा तैयार हो चुका है और तुम्हारे सभी सैनिक अपने-अपने वाहन तथा शस्त्रास्त्र के साथ तुम्हारे संकेत की प्रतीक्षा में खड़े हैं। रण-भेरी भी बज उठी है।

मुझे और अनेक दासियों को कुछ सैनिकों ने सुरक्षा के साथ एक सुदूर ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचा दिया और स्वयं उस गाँव को घेर कर खड़े

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो गये। उस गाँव के निवासियों को जब विदित हुआ कि हम महाराज अवन्ति-नरेश के 'अवरोध' की परिचारिकायें हैं तो उन्होंने अपने-अपने घरों में ले जाकर हमारी यथासाध्य आवभगत की। मैं कुछ सम्पन्न एक ब्राह्मण के घर में रखी गयी। मुझे देखकर उस घर की महिलायें कुछ आश्चर्य में पड़ गयीं और मेरे सम्बन्ध में नाना जिज्ञासायें करने लगीं। उन्होंने पहले तो मुझे भोजन आदि से सन्तृप्त किया और फिर मेरे और तुम्हारे संबध की जिज्ञासा की। मैंने उनसे कहा—"मैं कुमार की सेविका हूँ, उनके साथ छाया की भाँति रहकर उनकी सेवा करती हूं, उन महिलाओं में कुछ तो युवती नववधुयें थीं, जो अपने मुखड़े पर अवगुंठन डाले ही मेरी बात सुन रही थीं। तभी एक अर्ध-वयस्क महिला ने, जो सम्भवत: उनकी सास रही होगी, उन्हें कुछ डाँटते हुए कहा—"अरे यह तो तुम जैसी ही नववधू होने के योग्य है, इससे तुम सब क्यों लजा रही हो?" तब उन वधुओं ने अपने मुखड़े से आँचल हटाया और मुझे घेर कर बैठ गयीं। वे यह जान कर कि तुम्हारे अन्त:पुर की परिचारिकायें जब इतनी सुन्दर होती हैं तो वहाँ की रानियाँ कितनी लावण्यवती होंगी, बहुत आश्चर्य-चकित थीं। वस्तुत: राजकुल की चारदीवारी से निकल कर जन-सामान्य के जीवन को इतने निकट से जानने का यह अवसर मेरे लिये पहला था। मैं उन्हें देखकर स्वयं उनसे कुछ कम आश्चर्य और औत्सुक्य से भरी न थी। उनकी अर्ध वयस्का सास ने बड़े खेद के साथ मुझे बताया कि किस प्रकार उसके गाँव से तुम्हारे सैनिकों के भोजन के लिये अन्न आदि की व्यवस्था करनी पड़ी है। युद्ध के आतंक से सम्पूर्ण ग्राम उस समय पीड़ित है। ईश्वर ही उनकी रक्षा करने वाला है, आदि। साथ ही उन्होंने यह कहा कि प्रव्रजिता आर्या देवरक्षिता ने आकर उन्हें बहुत सान्त्वना दी है और वे इसी गाँव के एक देवालय में कुछ अनुगत प्रव्रजिताओं के साथ वास कर रही हैं। मुझे यह जानकर आश्चर्य और प्रसन्नता दोनों का एक साथ अनुभव हुआ और मैं आर्या से मिलने के लिये त्वरित हो उठी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस समय सूर्य अस्तोन्मुख था। गाँव की झोपड़ियों से धूम वितान निकलने लगा था, जिससे गोधूलि-वेला और भी धूमिल हो रही थी। एक माणवक के साथ देवालय की ओर जाने के लिये निकली तो तुम्हारे कुछ सैनिक हमारी सुरक्षा में वहाँ तैनात दिखायी पड़े। शान्त, किन्तु भीतर से आतंकित ग्राम्य जीवन मेरे लिये बिलकुल एक नया आकर्षण था। अधिकतर झोपड़ियों के बाहर फटेहाल ग्रामीण चुपचाप बैठे देख रहे थे। उनकी आँखों में किसी प्रकार की प्रतीक्षा न थी। उन्हें जैसे अभावों का कोई अनुभव ही न था। कुछ भी खा पी लेना और शरीर ढँकने के लिये कुछ चिथड़े धारण कर लेना मात्र ही उनके जीवन का सीमित व्यवहार था। ऐसा लगा, उनकी शिक्षा के लिये कोई समुचित व्यवस्था न थी। एक ओर जहाँ भारत के सर्वोच्च प्रतापशाली अवन्ति-नरेश के राजकुल का अत्यन्त विलासमय जीवन और दूसरी ओर प्रजा-वर्ग का वह अभाव-ग्रस्त जीवन, उन दोनों परस्पर विपरीत स्थितियों ने मुझे झकझोर दिया। मेरे मन में हुआ, क्या तुम इस प्रकार विजय-लिप्सा से निवृत्त होकर अपने प्रिय प्रजा-वर्ग के लिये कुछ विशेष सुख-सौविध्य के उपाय नहीं कर सकते थे? कुछ इसी प्रकार की व्याकीर्ण मनःस्थिति को लेकर मैं एक छोटी नदी के तट पर जीर्ण शिवालय में पहुँची, जहाँ भगवान् शिव की प्रतिमा के निकट आर्या को शांत मुद्रा में ध्यानस्थ देखा। प्रव्रजितायें दुःखी ग्रामीण रुग्ण जनों की सेवा में संलग्न थीं। मैं धीरे से जाकर आर्या के पास बैठ गयी। इस बीच जब मन्दिर में अँधेरा होने लगा तो एक प्रव्रजिता ने आकर धुँधिया कर जलता हुआ एक छोटा दीया रख दिया, जिसके मद्धिम प्रकाश में ध्यानस्थ आर्या की आलोक-मण्डित शान्त करुण आकृति और भी दीप्त हो उठी। मैं मौन एवं स्थिर भाव से वहाँ की शान्ति को आत्मसात् करने लगी। कुछ देर बाद आर्या ने आँखें खोलीं और भगवान शिव को अपना सजल विनम्र प्रणिपात निवेदन किया। जब मेरी ओर उनकी दृष्टि आकृष्ट हुई तब मैंने उठ कर उन्हें अपना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिचय देते हुए प्रणाम किया। वे कुछ प्रसाद एवं पूर्व परिचय का भाव व्यक्त करते हुए बोलीं—"पत्रलेखा, तू यहाँ !" मैंने कहा—"हाँ, आर्ये, कुमार के साथ चल रही परिचारिकाओं में मैं भी हूँ। आज ही कुमार शत्रुओं के साथ युद्ध में व्यस्त हो गये और सुरक्षा के लिये हमें यहाँ पहुँचा दिया गया है।" यह सुन कर आर्या कुछ क्षण गम्भीर हो गयीं, फिर बोलीं—"पत्रलेखा, जब तक इन शासकों के मन में पृथ्वी-विजय की लिप्सा जागती रहेगी तब तक सामान्य जन-जीवन का कुछ भी कल्याण नहीं होगा। अपने पराक्रम को प्रदर्शित करने की यह प्रवृत्ति युवराज को अपने पिता से प्राप्त हुई है।" यह कहकर आर्या ने भगवान शिव के निकट स्थापित एक छोटे पात्र से जल लेकर मेरे हाथ पर रखा और उसे ग्रहण करने का संकेत किया। मैंने उस पवित्र जल को ग्रहण किया। तब आर्या उठ खड़ी हुईं और मुझे उन प्रव्रजिताओं के निकट ले गयीं जो ग्रामीण जनों के विविध सेवोपचार में व्यस्त थीं। आर्या ने कहा—"हम अपने धर्म-कृत्य से समय निकाल कर यही सब किया करते हैं। इधर जब से कुमार की दिग्विजय यात्रा प्रारम्भ हुई है तब से जन-सामान्य का जीवन विक्षुब्ध हो उठा है। किन्तु यह विक्षोभ निष्क्रिय है। यदि यह बढ़ गया तो कुमार के अपने अस्तित्व की सुरक्षा कठिन हो जायेगी। हम तो तब भी अपने ढंग से जन-सामान्य के हित में प्रवृत्त रहेंगे, समर्पित रहेंगे।"

मैं आर्या के साथ कुछ देर इस प्रकार की गम्भीर बातचीत के पश्चात् भारी मन से उस माणवक के साथ उसी घर में लौट आयी। तब तक कुछ रात बीत चुकी थी। चारों ओर सन्नाटा छा रहा था। कभी-कभी हमारी सुरक्षा में नियुक्त सैनिकों के घोड़ों की हिनहिनाहट सुनायी दे रही थी। सब वधुओं के साथ मैंने भोजन किया। उस प्रकार का भोजन और स्वाद मेरे लिये बिलकुल अपरिचित थे, फिर भी उनकी सात्विकता और सहजता से मैं प्रभावित हुई ! तुम्हारे जैसे विलासी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजकुमारों के भवनों के भोजन में जो विविध पदार्थों की तीव्र सुगन्धि होती है वह उस भोजन में कुछ भी न थी, फिर भी मैंने अनुभव किया कि वह आंतरिक सुख एवं अपूर्व तृप्ति देनेवाला भोजन था। भोजन के पश्चात् पुन: मैं उन नववधुओं से घिर गयी। कुछ देर बैठकर उनकी सास विश्राम के लिये चली गयीं। मैंने नववधुओं के लिये एक विशेष प्रकार का प्यार भरा सम्बोधन "दुलहिन" सुना तो उस शब्द के अर्थ की परि-कल्पना करके अत्यधिक आनन्दित हुई। एक क्षण के लिये मेरे मन में एक विचार का कल्लोल सा उभर आया—"क्या इस जीवन में इतने प्यार से सम्वोधन का मैं पात्र बन सकूँगी ?"

अब तक दुलहिनें मुझसे अधिक घुलमिल गयी थीं। उनकी ग्रामीण बोली अवश्य मुझे समझ पाने में कठिनाई हो रही थी, फिर भी उनका तात्पर्य मुझसे अज्ञात नहीं रहता था। उन्होंने पहले तो मेरे वस्त्र और आभूषणों के नाम और मूल्य पूछे और फिर उन्होंने स्वयं अपने-अपने सजोये वस्त्र और आभूषणों के नाम बताये। उन्होंने अपने "मनसेधु" (यह शब्द भी जिसे पति के लिये प्रयुक्त कर रही थीं, मेरे लिये नया था) के हाथों से मिली नग वाली सोने की अँगूठी निकाली और अपनी-अपनी उँगली में पहनकर मुझे दिखाया। बड़े संतृप्त भाव से उनके सलोने चेहरों पर मुस्कान की फैलती किरणों में दिप रहे उनके अंग-प्रत्यंग के वस्त्राभूषणों का आकलन करने लगी थी। निश्चय ही मेरे अंग-प्रत्यंग पर भी बड़े कीमती आभूषण थे। और तब मैं अपनी प्रसन्नता न समेट पायी और उन दुलहिनों को, जो लगभग मेरे ही समान वयस् वाली थी "मुँह दिखावे" के रूप में अपने कुछ आभूषण दे दिये। इस पर पूरे परिवार के वातावरण में ही मैं "राजकुमारी" के रूप में सम्वोधित होती रही। मैंने अपने आभूषण देते हुए इतना आवश्य कहा था कि इन पर यद्यपि मेरा अधिकार नहीं, तथापि मैं तुम्हारी (युवराज चन्द्रापीड़ की) ओर से उन्हें दे रही हूँ। मैं राजकुमारी नहीं, उनकी एक सामान्य दासी हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु मेरी बात कौन सुनता, मैं उस घर में "राजकुमारी" बन गयी। इस परिचय के आदान-प्रदान में देर हो गयी तो सबने मुझे एक कोठरी में स्थान दे दिया और अपने-अपने स्थान पर चली गयीं। एकान्त होते ही मुझे तुम्हारी चिन्ता ने घेर लिया। तुम किस परिस्थिति में होगे। तुम्हारे शत्रुओं ने तुम्हारा कोई अनिष्ट तो नहीं कर डाला! यदि तुम्हें कुछ हो गया तो हम क्या मुँह लेकर उज्जयिनी जायेंगे और महादेवी से क्या कहेंगे, आदि। देर तक जगत्पिता भगवान शिव और जगज्जननी पार्वती का तुम्हारी कल्याण-कामना के उद्देश्य से स्मरण करती कुछ सो सकी।

जब प्रातःकाल उठकर स्नान आदि से निवृत्त हुई तभी तुम्हारे भेजे हुए दूत आ गये और सबको शिविर में चलने के लिये प्रेरित किया। दूतों ने यह सूचना दी कि तुमने शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये। संघर्ष घटिका मात्र चला कि उन्होंने तुम्हारे सामने घुटने टेक दिये और तुमने भी उन्हें अभय देकर लौटा दिया और स्वयं शिविर में आ गये। तुमने पहले अपनी क्षत-विक्षत सेना की पूरी जिज्ञासा की और सबके लिये समुचित व्यवस्था की और स्वयं अपने शिविर में मित्र वैशम्पायन के साथ विश्राम कर रहे हो। केवल तुम्हारी एक भुजा में बाण से चोट लगी है। इस सम्वाद से कुछ प्रसन्नता मिश्रित चिन्ता हुई और मैं तड़फड़ाती शिविर पहुँची। मैं जब तक वहाँ पहुँची तब तक चिकित्सकों ने तुम्हारे हाथ के व्रण पर औषधि का लेप करके पट्टी बाँध दी थी। तुम थके से पड़े हुए थे। मैंने तुम्हारे पटमण्डप में प्रवेश कर तुम्हें और तुम्हारे मित्र को प्रणिपात निवेदन किया और तुम्हारे कुशल-क्षेम की पूछताछ की। तुमने और तुम्हारे मित्र ने मेरी जिज्ञासा का केवल स्मित मात्र से उत्तर दिया और पानी के लिये संकेत किया। मैंने तत्काल दो पात्रों में शीतल जल लाकर तुम्हें अर्पित किया। तुमने मेरे द्वारा प्रदत्त उस जल को कुछ इस प्रकार पीया, जैसे बहुत देर के बाद पानी मिला हो। तुम्हारी प्यास की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीव्रता का तुम्हारे पीने के उस व्यापार से कुछ-कुछ अनुमान हुआ था। तृप्ति के सुख को अपनी प्रफुल्ल आकृति से सूचित करते हुए तुमने जल-पात्र रख दिया और मुझसे पूछा—"पाखी, तुझे तो वहाँ कुछ कष्ट नहीं हुआ?" वस्तुतः यह प्रश्न तुमसे मुझे करना चाहिए था, कि तुम्हें बाहु में अधिक कष्ट का तो अनुभव नहीं हो रहा है ! तब मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर क्या देती ! केवल कहा—"कुछ भी नहीं"।

फिर तुम दोनों को ताम्बूल देकर मैं वीणा पर हल्के कुछ छेड़ने लगी। तुम थकान की स्थिति में प्रायः ऐसा ही कुछ व्यापार पसन्द करते हो। उस दिन तुमने अत्यल्प आहार ग्रहण किया और अपने मित्र के साथ आगे की यात्रा की योजना में संलग्न हो गये। इस बीच मुझे अवसर मिला तो स्वयं बाहर निकल कर तुम्हारे सैनिकों और पशुओं के विषय में निकट के उपस्थित प्रतीहारों से जिज्ञासा की। एक क्षण के लिये इन्द्रायुध के पास गयी। उसके यत्र-तत्र क्षत अंगों पर स्वयं मन्दुरा-पाल से औषधि लेकर लगाया और उसकी पीठ थपथपायी। मैंने उस अश्वरत्न के कान में धीरे से कहा—"तेरे कारण कुमार की विजय हुई है।" और यह कहकर अपने हाथ से कुछ हरित तृण उठा कर उसके सामने किया, जिसे लपक कर उसने अपने थुथुनों से दबा लिया।

सायंकाल देर तक सेना के कुछ बड़े अधिकारी तुम्हारे स्वास्थ्य की जिज्ञासा से आकर बैठे; तुमने उनसे भी आगे की योजना के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया। मैं सोचती रही, दिग्विजय की यह प्रक्रिया जाने कब तक चलेगी ! मेरा वश चलता तो मैं उसे रोक देती। किन्तु क्या ऐसा सोचना भी मेरी अपनी सीमा में समुचित था ? मैंने तुम्हारे साथ यदि कोई परिहास की धृष्टता की तो बड़ी सावधानी के साथ की। क्योंकि तुम अन्यथा न समझ जाओ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने देखा, तुमने दूसरे दिन आगे की यात्रा के लिये प्रस्थान कर दिया और कई दिनों तक लगातार चलते-चलते तुम एक किरातों द्वारा सेवित वन प्रान्त में पहुँच गये। एक खुले क्षेत्र में तुमने अपने स्कन्धावार की व्यवस्था करायी। मुझे वह प्रदेश भयंकर लगा। कब किस ओर से कोई खूँखार वन्य पशु निकल कर हम पर आक्रमण कर दे, इसकी सम्भावना वहां सबने व्यक्त की। किन्तु तुम्हारे सैनिक भी उनके आक्रमण का मुकाबला करने में समर्थ हैं, यह कल्पना करके हम आश्वस्त थे। वहां जो पटमण्डप की व्यवस्था की गयी उसके अनुसार मेरा पटमण्डप अलग न था। लगभग मैं तुम्हारे शयन के निकट ही एक "कुथ" पर शयन करती।

तुम्हारे साथ का सुख मेरे लिये कोई अपरिचित न था। अब तक धीरे-धीरे मैं उसकी अभ्यस्त हो चुकी थी। इतना अवश्य था कि तुम्हारे निकट रहकर भी तुम्हारे व्यक्तित्व की गहराई की थाह न पा सकी। तुम हमेशा मेरे लिये अपरिचित ही बने रहे। यह स्थिति मेंरे हृदय में कांटे की भांति निरन्तर खटकती रही है। मैं उस पीड़ा को व्यक्त भी करती तो किस पर? एक रात जब तुम और तुम्हारे मित्र सो गये तब मेरी आंखें खुलीं। देखा, पटमण्डप के झरोखे से चन्द्रिका छिटक रही थी। सोचा, उन्मुक्त चाँदनी में निकल चलूं। धीरे से उठी और बाहर निकल आयी। संयोगवश किसी ने मुझे बाहर जाते हुए नहीं देखा। मैं उस एकान्त निर्जन रम्यप्रदेश में एक शिलाखण्ड पर बैठ गयी। तब आत्म-चिन्तन में मग्न मैंने अनुभव किया कि भीतर से मैं बड़ी तीव्रता से रोना चाहती हूँ। कारण कुछ भी ज्ञात नहीं हो रहा था। कुछ ऐसा लग रहा था, मेरे भीतर कुछ अनावश्यक सा व्यथाभार पुंजीभूत हो गया था, जो अश्रु-प्रवाह के रूप में बाहर निकल पड़ना चाहता था। मैं अपनी तीव्र वेदना के कारण रो पड़ने वाली थी कि उस निर्जन प्रदेश में दूर से किसी के सिसकने की धीमी आवाज मेरे कानों में पड़ी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने से कुछ दूर पर जाकर देखती हूँ कि कोई युवा सैनिक रो रहा था। कुछ देर पास की झाड़ीं में छिपकर मैं उसे देखती रही। मुझे यह आशंका हुई कि वह कुछ अनिष्ट न कर डाले। मेरा व्यथा-वेग तब तक समाप्त हो चुका था। कुछ देर प्रतीक्षा के पश्चात् मैं उसके पास पहुँच गयी और उसके रुदन का कारण पूछा। पहले तो वह घबराया किन्तु बाद में मेरी ओर से सान्त्वना पाकर उसने बताया कि वह तुम्हारी सेना का नवयुवक है, जो अपनी नवविवाहिता पत्नी को छोड़कर कई मास से तुम्हारी दिग्विजय यात्रा में आया है। उसने यह भी बताया कि वह मुझे पहचानता है। तुम कब तक उज्जयिनी लौटोगे इसकी कोई निकट में सम्भावना न होने के कारण वह पत्नी-वियोग से व्याकुल था। उस सैनिक के वचन में न केवल तुम्हारे इस विजय-व्यापार के प्रति आक्रोश था, प्रत्युत तुम्हारी अतृप्त विजयलिप्सा को लेकर एक प्रकार के विद्रोह का भी भाव था। जाने कितने युवक तुम्हारी इस लिप्सा की अग्नि में आहुति बन चुके और तुम्हें उनकी इस दशा पर तरस भी नहीं आती। मैं सच कहूँ, तो किसी प्रकार उस सैनिक को समझा बुझा कर लौटाया, अन्यथा वह इस ताक में था कि तुम्हीं पर प्रहार कर देता।

सुवर्णपुर के उस किरात-सेवित रम्य भूभाग में आये हमारे कुछ दिन ही बीते थे। एक दिन तुमने इन्द्रायुध पर आरूढ़ होकर मृगया के लिये पर्वतीय वन-प्रान्त में प्रवेश किया। तुम्हारी सहायता में कुछ घुड़सवार सैनिक भी गये। उसी प्रसंग में तुमने पर्वत के शिखर से उतरा हुआ एक किन्नर-मिथुन देखा। तुमने उसे पकड़ने के लिये इन्द्रायुध पर कशाघात किया। तुम्हें अपनी ओर आते देखकर किन्नरों का वह जोड़ा भाग चला। तुम उसके पीछे इतनी दूर निकल गये कि तुम्हारे सैनिक तुम्हारा पीछा भी न कर पाये। अन्त में जब तुम नहीं मिले तो थके-मांदे वे सुवर्णपुर लौट आये। जब तुम्हारे न लौटने की सूचना मिली तो मैं धक् से रह गयी! हाय, अब क्या होगा! तुम्हारे परम-सखा वैशम्पायन व्याकुल हो उठे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिन ज्यों-ज्यों ढलता गया स्कन्धावार पर एक उदासी-भरा आतंक छाता गया। धीरे-धीरे रात की काली छाया ने हमारे नैराश्य को और भी गहरा कर दिया। तुम्हारे सूने शयन के निकट देर तक मैं उदास बैठी रही। तुम्हारे द्वारा व्यवहृत प्रत्येक वस्तु पर मेरा ध्यान आकृष्ट होता और मेरी व्याकुलता बढ़ जाती। मेरा ताम्बूलकरंक उपेक्षित सा एक ओर लुढ़का पड़ा था। देर तक मैं और तुम्हारे. सखा एक-दूसरे को समझाते रहे और तुम्हारे अभाव की पीड़ा को झेलते रहे। तुम्हारे लौटने की आशा में कई दिन बीत गये, यहां तक कि एक मास का समय बीत गया और तुम नहीं आये। तब हमने इन्द्रायुध के खुरों के सहारे तुम्हारे मार्ग को खोजते हुए सुदूर एक सुरम्य सरोवर के पास अपने स्कन्धावार की व्यवस्था की और तुम्हारी प्रतीक्षा करने लगे। हमें अनुभव हुआ, तुमने निश्चय ही इस सरोवर के तट पर विश्राम किया होगा।

सहसा वह दिन आ ही गया जब तुम स्कन्धावार लौटे। उस दिन हमारे आनन्द की सीमा न रही। तुम भी अत्यन्त प्रसन्न दिखायी दे रहे थे। व्यवस्थित होकर अपने कुछ अन्तरंगों के साथ तुम बैठे और किन्नर-युगल का पीछा करने से लेकर घटनायें सुनायी। हम अपनी सांसें रोक कर सब कुछ सुन रहे थे। तुमने बताया कि इसी क्रम में तुम हेमकूट पहुंच गये और वहां गन्धर्वराज चित्ररथ की चित्र सुन्दरी कन्या कादम्बरी से तुम्हारा स्निग्ध परिचय एक तपस्विनी गन्धर्वकन्या महाश्वेता के माध्यम से घटित हुआ। तुमने बड़े विस्तार से गन्धर्वलोक की रमणीयता और गन्धर्वराजकन्या कादम्बरी के अप्रतिम रूप-लावण्य का वर्णन किया। धीरे-धीरे तुम्हारी बातों से स्पष्ट हो गया कि कादम्बरी के साथ तुम्हारा वह परिचय प्रणय के रूप में परिवर्तित हो चुका है। तुम उससे मात्र प्रभावित ही नहीं हो, उसे उपलब्ध करने के लिये भीतर ही भीतर उद्विग्न भी हो। इस प्रकार हेमकूट से आने के पश्चात् तुममें एक विचित्र प्रकार का परिवर्तन लक्षित हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं तुम्हारी इस बदली हुई अवस्था से मन ही मन विकीर्ण होती रही। किन्तु मेरी विकीर्णता, हां मेरी विकीर्णता ही, इतनी निगूढ़ तथा आन्तरिक थी कि उसे तुम भी लक्षित न कर सके, ऐसा मेरा अनुभव है। जब सब लोग चले गये और तुम दोनों साथी बच गये तो तुम्हें ताम्बूल देकर मैं भी विश्राम के लिये अपने पार्श्व के कक्ष में चली आयी। रात देर तक अपने साथी को तुम हेमकूट की घटनायें ही सुनाते रहे। लगभग तुम्हारी सभी बातें मेरे कानों तक आ रही थीं।

मेरे अपने भीतर एक अंधेरा सा गहराता महसूस हुआ। एक हल्का दीये का जो प्रकाश भी दूर लक्षित हो रहा था वह भी या तो सघन झाड़ियों के बीच में आ जाने से छिप गया या नियति के पवन के झोंके से बुझ गया था। निश्चय ही मैं तुम्हें पा सकूंगी, ऐसा मेरे मन में संकल्प नहीं जगा था, किन्तु तुम्हारे सान्निध्य का सुख मुझे सहज उपलब्ध होता रहेगा, ऐसी कुछ आशा सी मेरे मन में बन गयी थी। सान्निध्य से बढ़कर मुझ परिचारिका के लिये और क्या लाभ हो सकता था? लगा, वह भी मुझसे छिन जायेगा। मैं, जैसे विकसित होने के पहले ही सैकड़ों खण्डों में बिखर गयी थी। तुमसे यह मेरी व्यथा अज्ञात ही रहेगी, किन्तु इस अज्ञात व्यथा को झेलना अथवा जीना मेरे लिये अब कितना कठिन होगा, यह बात मैं तुम्हें कैसे समझाती!

निश्चय ही गन्धर्वराज की लाड़ली दुहिता अपूर्व लावण्य लेकर विधाता की अनुपम सृष्टि के रूप में अवतरित होगी। तुमने उसे अपने हृदय में स्थान दिया, यह भी कुछ अनुचित नहीं। उस समय एक क्षण के लिये, केवल एक मात्र क्षण के लिये तुमने सोचा कि तुम्हारे आसपास भी एक राजकन्या, जो भले ही परिस्थिति वश एक परिचारिका के रूप में तुम्हारे निकट आयी है, तुम पर अपना कुछ अधिकार रखती है। न सही अधिकार, वह भी एक हृदय वाली युवती है और उसकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी कुछ आशाएं और आकांक्षाएँ हैं। निश्चय ही तुमने कुछ भी ऐसा नहीं सोचा और अपना हृदय गन्धर्वराजकन्या के अपूर्व लावण्य पर प्रभावित होकर अर्पित कर दिया ! वस्तुतः तुम पर यह अधिकार वाली बात मेरी अपनी सीमा से बाहर की बात थी, किन्तु जाने क्यों, यह एक भ्रम ही सही, मेरे मन में पलने लगा था और कब उसने अपना मूल गहराई तक जमा लिया, यह मैं नहीं समझ सकी थी। फिर भी मैं अपनी परिचारिका की सीमा को भूल चुकी थी, ऐसा भी नहीं। निश्चय ही तुमने वही किया जो तुम्हें करना था। फिर भी तुम किसी प्रकार मेरी दृष्टि में वंचक नहीं हो। तुम्हारा, हेमकूट से लौटने पर दृष्टिगोचर हुआ परिवर्तित रूप भी मेरे लिये पूर्ववत् ही आकर्षण और आदर का विषय बना रहा। क्योंकि तुमने अपने नये प्रणय प्रसंग को रंचमात्र भी मुझसे नहीं छिपाया। तुम अपने भोले स्वभाव के कारण जानते थे कि तुम्हारी पाखी को वह सब कुछ वहुत ही अच्छा लगेगा। वस्तुतः मुझे वह सब अच्छा लगा, किन्तु मैं तुम्हारी उस सुखानुभूति को अपना सुख बना न पायी। वह जाने क्यों, मुझे शताधिक टुकड़ों में बिखेर गयी। जैसे नदी का जल अकस्मात् सामने आये अवरोध के कारण अव्यवस्थित हो जाता है कुछ वही मेरी आन्तरिक स्थिति हो गयी। मेरी, जीवन में वस्तुतः कोई साधना नहीं, कोई अर्चना या पूजा मैंने नहीं की। जो कुछ तुम्हारी सेवा के नाम पर आरम्भ भी हुआ वह अब अपनी व्यर्थता को स्पष्ट सूचित करने लगा था। अपना सम्पूर्ण जीवन ही विफल सा लगा। कुछ क्षण के लिये मैं चाहती थी कि अपना सब कुछ हानि-लाभ "विधाता की इच्छा" कह कर निश्चिन्त हो जाऊँ, किन्तु मैं अपनी क्षुद्रता से इतने सामर्थ्य को संजो नहीं पायी। मैं भीतर से सूखती चली गयी और धीरे-धीरे अपने भीतर मरुभूमि का सा सूनापन अनुभव करने लगी। उसमें उठते विचारों के बगूले मुझे प्रतिक्षण आन्दोलित करने लगे। एक रहस्यमय ढंग से भीतर ही भीतर मैं भी परिवर्तित हो चुकी थी, जिसका तुम्हें जरा भी भान न हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरे दिन प्रातः काल ही तुम्हारी प्रेयसी का वीणावादक केयूरक एक प्रतीहार के साथ उपहार और सन्देश लेकर पहुँचा। तुमने उसका कितने स्नेह और आदर के साथ स्वागत किया और समाचार पूछे वह देखने योग्य दृश्य था। सचमुच केयूरक एक स्निग्ध एवं मधुर प्रकृति का व्यक्ति था। किसी गन्धर्व को मैंने जीवन में प्रथम बार देखा था। वह सामान्य मानवीय धरातल के कुछ ऊपर उठा हुआ लगा था। मैंने अनुमान लगाया कि निश्चय ही जिस गन्धर्वराजकन्या से तुम्हारा परिचय हुआ है वह कोई असामान्य कोटि की दिव्य सुन्दरी होगी। उसके रूप-लावण्य के सम्बन्ध में तुम्हारे सभी उद्‌गार अक्षरशः सही होंगे। केयूरक ने नलिनी पत्रों के एक बड़े दोने में रखे हुए जो उपहार तुम्हें प्रस्तुत किये, उससे भी गन्धर्वजनों के शिष्ट रखरखाव का अनुमान होता था। नलिनी पत्रों के उस दोने को मुँह पर मृणाल-सूत्र से बांध दिया गया था और ऊपर से आर्द्र वस्त्र से ढँक दिया गया था। साथ ही थोड़ा गीला चन्दन लगाकर बाल मृणाल के वलय से उसे मुद्रित कर दिया गया था। उपहारों में कुछ तो पूगी-फल थे जो मरकत की भांति हरित, त्वङ्मुक्त, मंजरीयुक्त तथा दूधिया थे। कुछ कर्पूर की डली थी, जो भगवान् शिव के मस्तक पर स्थित चन्द्रकला जैसी लग रही थी और चन्दन का विलेपन था, जिसमें केसर की सुगन्ध भरी थी। कादम्बरी के अतिरिक्त महाश्वेता, मदलेखा और तमालिका आदि ने भी अपने-अपने ढंग से तुम्हें अपने प्रणिपात निवेदित किये थे। महाश्वेता की ओर से तुम्हारे विरह में कादम्बरी के अस्वस्थ हो जाने का सन्देश भी मिला। मैंने लक्षित किया कि इस सूचना से तुम्हें कुछ घबराहट मिश्रित प्रसन्नता हुई थी। क्यों न होती; तुम जो वहां जाकर आग लगा आये थे वह राख के रूप में परिणत हो गयी या भीतर ही भीतर सुलग रही है यह जानना तुम्हें अभीष्ट ही था! कामदेव के सदृश ललित अंगयष्टि वाले तुमने सम्भवतः यह भी अपेक्षा की होगी कि वह सुलगती हुई आग एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बार जोर से भड़क जाय और कादम्बरी को तुम्हारे अंकगत होने के लिये बाध्य कर दे। तुम्हारे मन में किसी सुकुमार रमणी को इतनी दूर तक पीड़ित करने का क्षुद्र भाव उठेगा, ऐसा मेरा कोई अनुमान न था। किन्तु कभी-कभी ऐसी भावना मन में अज्ञात रूप से उदित हो जाती थी।

बाद में मैंने देखा कि तुमने अपने सभी अन्तरंगों को विदा करके केवल मात्र केयूरक को साथ लिया। उस समय तुम्हारे निकट वीणा पर बैठी मैंने अनुभव किया कि मेरी हृत्तन्त्री एक कठोर ध्वनि के साथ टूट गयी है और उसके टूटने की उस ध्वनि की अनुगूँज से देर तक मेरा अन्तरतर आंदोलित होता रहा। तब तक तुम वहां से निकलकर अपने गन्धमादन हस्ती तथा अश्वरत्न इन्द्रायुध की ओर चले जा चुके थे। वहां मैं अकेली हो गयी थी, बस एक मात्र कुछ भीतर टूट जाने का एक मूक अहसास लिए हुए।

जब तुम उधर केयूरक के साथ अपनी प्रियतमा के विषय में ऐकान्तिक वार्ता में निमग्न हो गये तो मैं कुछ क्षण अवकाश पाकर सरोवर के तट की ओर निकल गयी। किन्नर-युगल वाली घटना के बाद जब से हमारा तुम्हें पता लगाते हुए वहां पहुँचना हुआ तब से मैं तुम्हारे अभाव के कष्ट से व्याकुल होकर प्रायः वहां सरोवर के तट पर जाती और देर तक तुम्हारे विषय में चिन्तन करती रहती। फिर तुम स्कन्धावार में आ गये थे तब भी मुझे एक दूसरे ढंग का तुम्हारा अभाव अनुभव-गोचर हो रहा था। प्राप्त भी तुम मेरे लिये अप्राप्त से हो चुके थे। मैं यह नहीं कहती कि तुम किन्नर युगल वाली घटना के पूर्व सम्पूर्ण रूप से मेरे थे। फिर भी तुम्हें लेकर ऐसा कुछ मुझे लग चुका था कि तुम पर मेरा भी कुछ-कुछ अधिकार हो चुका है। यह अधिकार-भ्रम सम्भवतः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सेवा में समर्पित प्रत्येक व्यक्ति के मन में अपने सेव्य के प्रति उत्पन्न हो जाता है। मैं अपने उस भ्रम को अपने जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि मानकर उसे ही जीती चली जा रही थी। हेमकूट से यहाँ लौटकर तुमने निश्चय ही उसे बहुत कुछ उच्छिन्न कर दिया। इसमें तुम्हारा कोई अपराध था ऐसा मैं नहीं कहती। अपराधिनी तो मैं थी कि अपनी सीमा से बाहर निकल कर पिपासा के शमन के लिये उस ओर दौड़ गयी जिस ओर तीव्र किरणें छलछलाती दिखायी दे रही थीं। उस आतपतापित धरती पर दौड़ने से मेरे पैरों में छाले पड़ गये और काँटों के गड़ने से कुछ-कुछ वे लहूलुहान से हो चुके थे। तुम समझ सकते हो उस समय मेरी पीड़ा कैसी रही होगी। किन्तु सम्भवतः तुम समझ सकते थे, अथवा समझ कर भी नहीं समझ सकते थे। क्योंकि अधिकतर तुमने जीवन में प्राप्तियों का ही सुख पाया है। अभाव का, वह चाहे किसी प्रकार का हो, तुमने शायद ही कष्ट झेला हो। किन्तु मेरे जीवन का आरम्भ ही अभाव की अनुभूति के साथ हुआ है और जाने कितने अभावों के थपेड़े मुझे खाने पड़े! तब भी कुछ विचित्र सी बात है, मेरी जीवन-तरी फिर भी तैरती चली जा रही थी। मैं अनुमान नहीं कर सकी थी कि वह किसी स्थान पर जा लगेगी अथवा बीच में ही डूब जायेगी। मैं, सच कहूँ, डूब जाने और इस प्रकार थपेड़े खाते तैरने में कोई अन्तर मेरे लिये नहीं रह गया था। क्योंकि कष्ट की तीव्र अनुभूति मेरे लिये दोनों स्थितियों में थी।

कुछ इसी प्रकार की अस्त-व्यस्त कल्पनाओं में डूबती-उतराती मैं उस दर्पण-सदृश विमल सरोवर के तट पर बैठी रही। मैंने तट पर बैठे देखा, मछलियाँ किलोलें कर रही थीं। जल को सम्पूर्णतया जीवन मान लेने वाली वे मछलियाँ कितनी भ्रान्त थीं! जल से अलग होकर जीने की वे कल्पना नहीं कर सकती थीं, ठीक उसी प्रकार जैसे मैं तुम्हारे नैकट्य के अभाव में जीने की कल्पना नहीं कर सकती थी। किन्तु जब मुझे ऐसा लगा कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे तुम्हारे समीप भी रह कर तुमसे दूरी को ही झेलना होगा तब मेरी कुछ स्थिति जल से अलग हुई मछली की सी हो गयी थी। मुझे कुछ-कुछ अब अनुभव होता है कि इस प्रकार अपने को तुम्हारे अर्पित नहीं करना चाहिए था। किन्तु अब इस प्रकार सोचना भी पागलपन मात्र होगा। समर्पण की भावना एक सम्भ्रान्त नारी के मन में किसी पुरुष के प्रति एक बार उदित होती है। वही धीरे-धीर उसका जीवन बन जाती है। भले ही उसमें वह अपनी बाजी खो दे और आजीवन तरसती रह जाय।

तुमने केयूरक के साथ उसी दिन हेमकूट जाने का निर्णय लिया और मुझे अपने साथ चलने के लिये कहा। मैं कुछ ही देर पहले सरोवर के तट से लौट कर आ ही रही थी कि तुम्हारे इस निर्णय की सूचना मिली। तुम्हारा हेमकूट जाने का निर्णय तो ठीक था, किन्तु मुझे भी वहाँ साथ ले जाने की बात कुछ विचित्र-सी लगी। तुमने सचमुच अब तक मुझे बच्ची ही समझ रखा था। सोचा होगा, स्कन्धावार में अकेली क्या रहेगी, हेमकूट की निराली छवि देखेगी तो मन बहल जायेगा। एक प्रकार से तुम मुझे खिलौने देकर बहला देने का विचार रखते थे, ऐसा ही कुछ तब मैं समझ सकी थी। मैं शीघ्र तैयार होकर पहुँची तो देखती हूँ, तुम्हारे अश्वरत्न को पर्याण आदि से सुसज्जित करके परिचारक लोग मन्दुरा से बाहर ला चुके थे। केयूरक एक दूसरे घोड़े पर चलने के लिये तैयार खड़ा था। तुम वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर निकले और पास खड़ी मुझे इन्द्रायुध पर अपने पीछे बैठने के लिये इशारा किया। मेरे जीवन काल में पहली बार तुम्हारे पीछे बैठने का यह प्रसंग घटित हुआ था। मेरे लिये कुछ अटपटा होने पर भी यह तुम्हारा निर्णय था, अतः अमान्य कैसे हो सकता था। स्कन्धावार का प्रबन्ध तो तुमने वैशम्पायन को सौंप दिया और कुछ दूर तक साथ आये परिजनों को लौटा कर आगे बढ़ गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्द्रायुध की पीठ पर तुम्हारे पीछे बैठी मैंने गिर जाने के भय से लगभग तुम्हें पकड़ रखा था। मेरी वह पकड़ तब बहुत कुछ आलिगन का रूप ले लेती थी जब इन्द्रायुध तुम्हारे कशाघात से कभी-कभी उचक कर दो पैरों पर खड़ा हो जाता था। ऐसी स्थिति कई बार आयी। मुझे तुम्हारे आलिगन का सुख अवश्य प्राप्त हुआ, किन्तु मुझे लगा था, तब भी तुम मेरे उस अतिसामीप्य से अनासक्त ही रहे। तुमने कोई ऐसी बात भी न की, जिससे मैं अपने सान्निध्य सुख की लेशमात्र भी तुम्हारे मन में उत्पत्ति की कल्पना करती। केवल तुम क्रमशः सामने आती रम्य उपत्यकाओं की शोभा की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट करते रहे और ऐसा लगता था, तुम उस शोभा से प्रभावित ही नहीं, अभिभूत से हो चुके थे। सचमुच उस वन-प्रान्त में पर्वतों की उभरती मेघ-मण्डित चोटियाँ और शताधिक धाराओं में बहते निर्झरों की कलकल ने मुझे भी कुछ कम आकृष्ट नहीं किया था। मैंने अनुभव किया कि जिसे हम मर्त्यलोक के वासी स्वर्ग की संज्ञा देते हैं वह कुछ ऐसा ही होगा। ज्यों-ज्यों हेमकूट निकट आ रहा था उस प्रान्त की रामणीयकता और भी घनीभूत होती जा रही थी। मार्ग के घने और लम्बे वृक्षों पर बैठे ऐसे भी नाना वर्णों वाले पक्षियों के जोड़े मैंने देखे जो अवन्ति में कभी नहीं दिखायी पड़े थे। उनके चंचुपुटों से निर्गत स्वरलहरियाँ कान में पड़ते ही संगीत की किसी विलक्षण तथा अनसुनी तान को संकेतित कर रही थीं। मेरा संगीत से काफी लगाव रहा है, किन्तु उसका शास्त्र पक्ष मुझे सामान्य रूप से हीं अवगत हो सका था। फिर भी यदि देर तक उन-स्वर विशेषों को सुनती तो निश्चय ही सप्त स्वरों से अधिक स्वरों की कल्पना कर लेती और उनके सूक्ष्म भेदों को जान लेती। तुम कभी-कभी गन्धर्व-राज की कन्या कादम्बरी के ध्यान में लगभग खो जाते थे। उस परिस्थिति में मैं नहीं चाहती कि तुम्हारा ध्यान मार्ग की रम्यता की ओर आकृष्ट करूँ। केयूरक हमारे पीछे-पीछे आ रहा था और विशेष-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष स्थानों का नामोल्लेख कर रहा था। और अन्त में हम उसी दिन देवी कादम्बरी के भवन-द्वार पर पहुँच कर घोड़े से उतर गये। वहाँ उपस्थित किसी वर्षवर से केयूरक ने पता लगाया तो विदित हुआ देवी क्रीड़ा-पर्वत "मत्तमयूर" के नीचे कमल-वन-दीर्घिका के तट पर निर्मित "हिमगृह" में विद्यमान हैं। तब हम केयूरक द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से प्रमद वन के बीच से कुछ दूर जाकर वहाँ पहुँच गये। कदली-कुंज के बीच सब ओर से पुरइन के पत्तों से ढँके उस स्थान की हरितवर्णा श्री कुछ विलक्षण ही लगी। कदली के पत्तों से मिलकर सूर्य की किरणें भी वहाँ उसी वर्ण में परिणत हो गयी थीं। हमने तोरणों की बीच से प्रवेश किया। मैंने देखा कि तोरणों के दोनों ओर बनी वेदिकाओं को चन्दन-पंक से उपलिप्त किया गया था। कमल-कलिकाओं की क्षुद्र-घाटियाँ उन तोरणों में लटक रही थीं। सिन्धुवार पुष्पों की मंजरियाँ और मल्लिका की कलियों से उन्हें सजाया गया था। लवंग के पल्लवों की वन्दनवारें बाँधी गयी थीं। कुमुद-कुसुमों की मालाएँ तोरणों की ध्वजाओं पर आन्दोलित हो रही थीं। मृणाल की वेत्रलता हाथ में लिये हुए तथा फूलों के गहनों से सजी द्वारपालिकाएँ तोरणों के दोनों ओर वसन्तलक्ष्मी की प्रतिमूर्तियाँ सी खड़ी थीं।

मैंने आगे बढ़ कर चारों ओर दृष्टि फैलायी तो देखा कि वहाँ छोटी-छोटी गृहनदिकाएँ प्रवाहित हो रही थीं। उनके तटों पर कुमुद पुष्पों के पराग रेत का काम कर रहे थे। बीच-बीच में चन्दन जल की धाराएँ बहायी गयी थीं। कहीं जलार्द्र वितानों के नीचे निचुल-मंजरी की छोटी-छोटी लाल चँवरियाँ लटक रही थीं। और, रक्त वर्ण के कमलों के शयन बने थे, जिनके चारों ओर कुट्टिम पर सिन्दूर की रेखाओं से सीमा-बन्ध कर दिया गया था। स्फटिक के भवनों में एला के रस के छिड़काव के कारण भीनी-भीनी सुरभि निकल रही थी। कहीं मृणालों से भरे धारा-गृहों के शिखरों पर निर्मित यन्त्र-मयूरकों के मुख-भाग से जल-धाराएँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निकल रही थीं। कहीं पर्ण-शालाएं बनायीं गयी थीं, जिन पर जम्बू पल्लवों का आच्छादन डाल दिया गया था और उस पर सहकार का रस छिड़का गया था। कहीं वापी में कांचन की कमलनियाँ खिली हुई थीं, जिन्हें कृत्रिम गजशावक अस्त-व्यस्त कर रहे थे। कहीं सुरभित जल से भरे कुओं से घटीयन्त्रों द्वारा पानी उलीच कर जलद्रोणिकाओं में भरा जा रहा था। उन घटीयन्त्रों का निर्माण भी अपनी सुकुमारता में विलक्षण था। क्योंकि पत्ते के खोने ही घटीयन्त्र के काम में लाये गये थे। सनाल नीलोत्पलों को गूंथकर घटीयन्त्रों को फिराने वाली माला बनायी गयी थी। कमल की पंखुड़ियों को जोड़ कर चक्का बनाया गया था।

इस वर्णन को और विस्तार देने की मेरी कोई यहाँ आन्तरिक इच्छा नहीं है, फिर भी वह सब दृश्य मेरे लिये बिलकुल ही नया था। तुम्हारे राजकुल में इसकी कोई कल्पना तक भी नहीं की जा सकती थी। मैं उन सब व्यापारों को देखकर समझ गयी कि सब कुछ देवी कादम्बरी की विरह-व्यथा के निवारण के लिये हो रहा है। इस इतने विशिष्ट उपक्रम में भले ही उस व्यथा की उतनी तीव्रता का अनुमान नहीं हो सकता था, किन्तु देवी कादम्बरी के गुरुजनों की ओर से उनके प्रति अपने स्नेह का उससे अवश्य प्रकाशन होता था। निश्चय ही जिनसे तुम्हारा प्रणय-व्यापार का वह पूर्वरंग घटित हुआ था वह एक अतिशय सुकुमार प्रकृति की राजकन्या होगी जिन्हें "असूर्यम्पश्या" कहने का विचार होने लगा था।

देवी कादम्बरी के हिमगृहक में शैत्योपचार में अस्त-व्यस्त परिजनों पर मेरी भी दृष्टि पड़ी थी। तुम मुझे कभी-कभी "वराकी" शब्द से अभिहित किया करते थे। केवल मुझे ही नहीं, यह शब्द अपने निकटवर्ती अन्य जनों के प्रति स्नेह-महगत भाव से प्रायः तुम्हें कहते सुना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। अचानक यही शब्द उस समय देवी कादम्बरी के प्रति मेरे मुंह से निकल पड़ा था। किन्तु उसे तुमने नहीं सुना था, तब मुझे अपनी दयनीयता से बढ़कर देवी की दयनीयता लगी थी। और चलते-चलते सोच रही थी, यदि हो सका तो मैं अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को समर्पित करके देवी को इस दयनीयता से मुक्त करूँगीं ! तुम मेरी इस बात से मुझे अनात्मज्ञ कह कर मेरी भर्त्सना कर सकते हो किन्तु मैं जाने क्यों, ऐसा ही कुछ सोच गयी थीं। मैंने अपने जीवन में किसी वस्तु के लिये कोई अपनी तीव्र आकांक्षा व्यक्त नहीं की। यह मेरा सौभाग्य ही था कि तुम्हारे राजकुल में, महादेवी के स्नेह-सिक्त संरक्षण में मेरे लिए कोई वस्तु अलभ्य न रहीं। वस्तुतः यदि मैंने हृदय से, अपने हृदय की पूरी गहराई से जिस एक वस्तु की आकांक्षा की वह तुम थे। और मैं अपने भाग्य को क्या कहूं, कि वह एकमात्र अभीष्ट वस्तु, तुम मेरे न हो सके !

मुझे अपने जीवन की एक घटना याद आ रही है, उज्जयिनी में कोई विशेष उत्सव का प्रसंग था। सम्भवतः उसी दिन महाशिवरात्रि थी। मैं चाहती तो महाराजाधिराज और महादेवी के साथ ही बहुत ही सुविधा से भगवान भूतभावन महाकाल के दर्शन का लाभ कर सकती थी। किन्तु अपनी ही ऐसी इच्छा हुई कि जन-सामान्य के साथ ही भगवान के दर्शन करूँगी। महादेवी ने भी मेरे आग्रह पर अनुमति दे दी और मेरे साथ एक वृद्ध कंचुकी को लगा दिया। जब मैं भगवान के मन्दिर के द्वार पर पहुँची तो वहाँ दर्शनार्थियों की विशाल भीड़ देखी। उस भीड़ में मैं दर्शन कर सकूँगी, इसमें सन्देह होने लगा। लोग क्रम से प्रवेश करने लगे। किन्तु क्रम में लगे लोग भी, देखती थी, आगे वालों को बलपूर्वक पीछे करके अथवा धक्के देकर बढ़ने का प्रयास कर रहे थे। मैंने अनुभव किया कि भगवान के दर्शन-लाभ का सुख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त करने के सभी लोग समान रूप से अधिकारी हैं। किन्तु जो धक्के देकर आगे बढ़ने का प्रयास कर रहा है वह दूसरों के अधिकार का हनन कर रहा है। फिर भी मैं पीछे से बलपूर्वक आगे बढ़ने वाले सभी दर्शनार्थियों को आगे कर दिया करती थी और फल यह हुआ कि मैं सबसे पीछे रह गयी और उस अनन्त भीड़ ने मुझे प्रवेश करने का अवसर ही नहीं दिया। मैं वृद्ध कंचुकी के साथ निष्फल लौट आयी। इस प्रसंग में भी मेरी कुछ ऐसी ही स्थिति हो रहीं थी। तुम्हें प्राप्त करने के लिये मैं किसी को धक्का देकर बढ़ूं यह मेरे स्वभाव में नहीं था और प्राप्त करने के प्रयास के बदले उसे ही सहायता करके अपने को कृत-कृत्य मानूँ, ऐसा ही मेरा मन तत्काल होने लगा था। यथासम्भव यही कारण था कि मेरे मुँह से देवी के लिये "वराकी" शब्द निकल पड़ा था।

अब तक हम वहां पहुँच चुके थे जहां देवी कादम्बरी अपनी सखियों से घिरी बैठी थीं। ऐसा लगा था, उन्हें तुम्हारे आगमन की सूचना मिल चुकी थी, क्योंकि वे बड़ी उत्सुकता से तुम्हारे बारे में परिजनों से कुछ पूछ रही थीं। जब तुम्हें सामने आते हुए देखा तो अपने कुसुम-शयन से उठ बैठीं। फिर वे कुछ कुछ उठ खड़ी होने का प्रयास करने लगीं। हड़बड़ी में उनका उत्तरीय सरक गया था। बायें हाथ को भूमि पर टेक कर उठने का सहारा लिया और दाहिने हाथ से अपने विकीर्ण केशपाश को सम्हाला। लगा, उनकी आंखें तत्काल कुछ-कुछ आर्द्र होने लगी थीं। अब तक तुम उनके बिलकुल निकट पहुँच चुके थे और पहले तुमने देवी महाश्वेता को अपना प्रणिपात निवेदन किया था और बाद में देवी कादम्बरी को प्रणाम किया था। उत्तर में उन्होंने भी तुम्हें प्रणाम किया था और फिर बैठ गयी थीं। तुम्हारे लिये वहां रत्नजटित आसन्दी लायी गयी थी, किन्तु तुम जमीन पर ही बैठ गये थे। इसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समय केयूरक ने उनसे मेरा परिचय कराया था कि मैं तुम्हारी प्रसाद-भूमि पत्नलेखा नाम की ताम्बूलकरंकवाहिनी हूँ। तभी मुझे देवी ने देखते ही कहा था—"प्रजापति का मानुषियों में भी कितना पक्षपात है ! "और यह कहकर अपने समीप में मुझे बैठाया था और बड़े स्नेह से मेरे ऊपर हाथ फेरने लगी थीं।

मैं मन ही मन देवी के सुकुमार हाथ के स्पर्श से उल्लसित हो रही थी। साथ ही उनके रूप-लावण्य को निकट से देखकर मुग्ध हो रही थी। उनके प्रति तुम्हारा आकर्षण कुछ भी अस्वाभाविक नहीं लगा था। निश्चय ही उन्होंने मेरे रूप की प्रशंसा की थी। हो सकता है, उनकी दृष्टि में मानुषियों के रूप और गन्धर्व स्त्रियों के रूप में कोई विशेष अन्तर उस समय झलक गया हो। यह भी हो सकता है कि मुझे अपने ही अप्रतिम रूप-लावण्य का उतना भान न रहा हो। अपनी प्राप्त वस्तु को मनुष्य प्रायः उपेक्षा की दृष्टि से देखता है और अप्राप्त के पीछे दौड़ता है। किन्तु मैं उन लोगों में न थी। मुझे जो कुछ विधाता की ओर से रूप-लावण्य के रूप में मिला था, उसे मैं अपनी क्षुद्र सीमा में ही देखती और तुम्हारी सेवा में निरत रहती। मैंने सुना था, बाह्य आकर्षण भले ही कुछ क्षणों के लिये दूसरे के मन को प्रभावित कर दे, किन्तु वह कोई स्थिर प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाता। दूसरे के मन को स्थिर रूप से प्रभावित करने के लिये तपस्या करनी होती है और सेवा का भाव उत्पन्न करना होता है। जब भगवान शिव को हिमालय-राजदुहिता उमा ने अपने बाह्य सौन्दर्य से प्रभावित नहीं किया और इसी बीच उन्होंने अपनी आंखों से रूप के देवता कामदेव को भस्म होते देखा तो उन्होंने तपस्या और सेवा की पद्धति को अपना लिया था और तब वे अभीष्ट उपलब्ध कर सकी थीं। मैं अपने सेवाभाव को उस ऊँचाई तक पहुँचा हुआ कहूँ तो यह मेरी मूर्खता होगी। निश्चय ही तुम देवी कादम्बरी के अप्रतिम रूप पर मुग्ध थे, किन्तु तुम्हारे लिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समर्पित मेरा जीवन बिलकुल व्यर्थ था, ऐसा मैं कैसे मान सकती थी ! हां, यह अवश्य है, कि तुमने कादम्बरी के प्रणय को अपने हृदय के हार के रूप में आत्मसात् कर लिया और मेरे फूलों को यदि कुछ क्षण तक अपने चरणों में ही पड़े रहने दिया होता तो मेरी पूजा भी कुछ अवश्य सफल हो जाती। किन्तु वह सर्वथा विफल हो गयी ऐसा भी मैं स्वीकार नहीं करती। कुछ तो तुम्हारे आस-पास उन फूलों की सुरभि वातावरण में बिखर चुकी होगी और तुम्हें अव्यक्त रूप में प्रभावित किया होगा !

तुम्हें देखकर देवी कादम्बरी अवश्य ही भीतर से उल्लसित हो रही थीं। फिर भी उन्हें इतना शीघ्र मिल सकोगे, यह कल्पना न कर सकने से उनकी व्यथा शान्त न थी। अस्वास्थ्य जैसे उन्हें अब भी घेरे हुए था। निश्चय ही तुम्हारे विरह की अनुभूति ने अपने जीवन में उन्हें प्रथम बार पीड़ा से परिचित कराया था। और सम्भवतः उन्हें स्वस्थ करने के लिये शीतोपचार का सब उपाय व्यर्थ ही नहीं, किन्तु विपरीत प्रभाव उत्पन्न कर रहा था। यद्यपि वे अपने हाथ से मेरे शरीर पर स्निग्ध स्पर्श से मुझे अनुगृहीत कर रही थीं तथापि मेरा मन उनके आन्तरिक सन्ताप की कल्पना करके बहुत कुछ द्रवित हो उठा था। वे अपनी मूक वाणी से बहुत कुछ कह डालती थीं। जैसे मौन ही उनकी सहज वाणी बन चुका था। प्रणय का वह रूप मैंने प्रथम बार अभिलक्षित किया था।

उस समय उनकी सान्त्वना में जो कुछ तुमने कहा था वह वास्तव में तुम्हारे हृदय में देवी के प्रति उत्पन्न सहज स्नेह का परिचायक था। तुम इतने वाग्यत होकर भी वहाँ किसी जलस्रोत की भाँति उच्छल होकर बह पड़े थे। कुछ क्षण के लिये मैंने अनुभव किया कि तुम्हारा दृढ़ गाम्भीर्य-दुर्ग देवी की सतत स्नेह वर्षा से भहराने लगा था।

तुम उस दिन पुनः स्कन्धावार लौट आने के लिये चलने लगे थे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और सबसे अनुमति लेकर बाहर निकल आये थे। तभी पीछे से आकर केयूरक ने तुमसे कहा था—"देव, मदलेखा प्रार्थना करती है, कि देवी कादम्बरी के मन में पत्रलेखा के प्रथम दर्शन से ही प्रीति उत्पन्न हो गयी है, अतः वे चाहती हैं कि वह लौट आवे। बाद में चली जायगी।" यह सुनकर तुमने मुझे देवी की प्रसन्नता प्राप्त करने से धन्य एवं स्पृहणीय कहा था और अपनी स्वीकृति देकर लौट गये थे। सचमुच मैं धन्य एवं स्पृहणीय थी, जिसे तुमने और देवी ने समान रूप से अपना स्नेहभाजन बनाया था। किन्तु मैंने एकान्त में जब भी अपने को टटोला तो लगा था कि वह मेरी धन्यता और स्पृहणीयता एक बोझ बन चुकी है। वह बोझ, जिसे उठा तो लिया जाता है, किन्तु किसी भी परिस्थिति में सिर से उतारा नहीं जा सकता है। और यह चिन्ता कि क्या अच्छा होता, उसे उठाया ही नहीं जाता, उस समय बिलकुल अर्थहीन हो जाती है। तुम मेरी इस परिस्थिति की अब सही कल्पना कर सकोगे, जिसे मैं प्रायः एक अद्‌भुत प्रकार की दयनीयता की संज्ञा देती रही हूँ।

तुम स्कन्धावार लौट गये तो देवी के साथ मेरा उठना-बैठना ठीक उसी प्रकार हो गया जैसा तुम्हारे साथ था। यदि मैं झूठ नहीं कह रही हूँ, तो कहीं तुमसे भी अधिक गहरा सामीप्य देवी ने मुझसे कुछ ही समय के अन्तराल में स्थापित कर लिया था। यहाँ तक कि तुम्हारे विषय में जब भी अन्तरंग बातें करतीं तब अपनी अन्तरंग सखियों को भी अलग कर देतीं। इस प्रकार मैं उनकी अन्तरंगतम हो चुकी थी। मेरा दुर्भाग्य इतना है कि मैं तुम्हारी अन्तरगतम न हो सकी थी। तुमने "पाखी" को निश्चय ही पंजरगत होने न दिया था, फिर भी वह किसी पंजरगत से कुछ कम नियन्त्रित न थी।

स्कन्धावार पहुँचने पर तुम्हें अपने पिता का पत्र मिला था और तुम सैनिकों को लेकर उज्जयिनी चले गये थे। महाबलाधिकृत मेघनाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को आज्ञा दी थी, केयूरक के साथ पत्रलेखा जब आये तो उसे लेकर उज्जयिनी पहुँचना। वैसा ही हुआ। तुमने स्कन्धावार की पूरी व्यवस्था पुनः सुहृद् वैशम्पायन पर छोड़ रखी थी। केयूरक द्वारा प्रणाम भेजते हुए देवी कादम्बरी को जो सन्देश देने के लिये मेघनाद से तुमने कहा था उसका प्रत्येक वाक्य आज भी मेरे कानों में गूँज रहा है। तुमने बहुत ही स्पष्टता के साथ निवेदन किया था कि परिस्थितियाँ मनुष्य को विपरीत आचरण के लिये बाध्य कर देती हैं। यद्यपि तुम नहीं चाहते थे कि देवी कादम्बरी से तुम्हारा अब कोई विछोह हो, तथापि तुम पिता की आज्ञा मानने के लिये बाध्य थे। निश्चय ही तुम्हारा देवी के प्रति स्नेह कोई कपट का कूटजाल न था। तुम्हारी भक्ति झूठी वंचनाओं से भरी न थी। देवी के समक्ष तुम्हारा आत्मार्पण कोई औपचारिकता न थी। और धूर्तता का लेशमात्र भी उसमें रहा होगा, ऐसा मैं ोच भी नहीं सकती थी। निश्चय ही अपने को तुमने एक अपराधी के रूप में सूचित किया था और अपने को मूक रखकर उचित दण्ड का अधिकारी माना था। तुमने देवी महाश्वेता को देवी कादम्बरी के उपालम्भ का पात्र भी बनाया था, जिन्होंने तुम जैसे "अपात्र" पर गुणों का मिथ्या अध्यारोप करके तुम्हारी व्यर्थ प्रशंसा की थी। वस्तुतः यह सब कुछ तुम्हारे सहज स्निग्ध हृदय का सद्भाव था जो सन्देश के रूप में तुम्हारे मुख से निकला था।

निश्चय ही तुम विनयशीलसम्पन्न पुरुष हो। तुम्हारे प्रणय का पात्र बन कर कोई भी महिला धन्य हो सकती है। देवी कादम्बरी वस्तुतः धन्य हैं। यद्यपि तुमने अपने असीम प्रणय के कारण अपने को ही उनके हृदय में प्रतिष्ठित मान कर धन्य समझा था। किन्तु देवी के साथ रहकर मैंने अनुभव किया कि बहुत दूर तक तुम उनके अन्तरतर में प्रतिष्ठित हो चुके हो। जब केयूरक के साथ मैं स्कन्धावार पहुँची तो मेघनाद ने मुझे उज्जयिनी चलने के लिये प्रेरित किया। मैंने वहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोच लिया था कि तुम देवी कादम्बरी के विषय में समाचारों से अवगत होने के लिये उत्कण्ठित हो रहे होगे।

मैं इस आने-जाने के व्यापार से न केवल शारीरिक दृष्टि से, प्रत्युत मानसिक दृष्टि से भी अत्यधिक श्रान्त हो चुकी थी। यद्यपि उन दिनों मैं तुम्हारी छाया बन कर तुम्हारे साथ न थी, तथापि तुम छाया के रूप में मेरे आस-पास सदा बने रहते थे। देवी कादम्बरी तुम्हारे प्रत्येक व्यापार, क्रिया-कलाप एवं स्वभाव के विषय में जिज्ञासा करती रहती थीं। जैसे मेरे माध्यम से तुम्हें पूरा पढ़ लेना चाहती थीं, फिर भी लगता था उनकी जिज्ञासा का अन्त न था। तुम्हारे बारे में सोच-सोचकर उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देती और उनके बारे में निकट से जानकारी रखती, जिससे तुम्हारे प्रश्नों का सही-सही उत्तर दे सकूँ। इस आन्दोलित स्थिति में प्राय: भूल गयी कि मेरा भी कोई अस्तित्व है। तुम्हारे विषय में अपने को लेकर कुछ निर्णय करूँ इसके लिये अवसर भी नहीं था और अब कुछ आत्मवंचना-सी भी लगती थी। मेरे सामने का सब कुछ सपाट और धुँध भरा था। उसमें अपना गन्तव्य कैसे सूझ सकता था!

देवी कादम्बरी का समाचार लेकर उज्जयिनी पहुँची तो तुमने झुकी हुई मुझे अतिशय प्रीति के साथ मन्द-मन्द हँसते हुए प्रगाढ़ आलिंगन में बाँध लिया था। सचमुच मैं उस समय तुम्हारी और भी प्रिय हो गयी थी। निश्चय ही उस क्षण मैं तुम्हारे पुष्ट शरीर की उष्णिमा प्राप्त कर किसी अननुभूतपूर्व विलक्षण सुखातिरेक से भर उठी थी, किन्तु जाने क्यों, उस सुखातिरेक की अनुभूति ने मुझे अभिभूत नहीं किया था। मैं तुम्हारे अलग होने पर तटस्थ ही बनी रही। परिजनों में केयूरक तथा तमालिका के नाम लिये थे। तब सबकी ओर से मैंने तुम्हें प्रणाम निवेदन किया था और तुम गद्गद होकर मुझे भवन के भीतरी भाग में ले गये थे और वहाँ से अपने अन्तरंग जनों को भी विदा कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया था। तुम्हारा सबसे पहला प्रश्न था—"पाखी, तू वहाँ कैसे रही" तुम्हारे इस प्रश्न ने मुझे दूर तक आहत कर दिया था। किन्तु मेरी उस आन्तरिक स्थिति से तुम अवगत ही कैसे हो सकते थे ! क्यों कि मैंने अपने को समग्र रूप से तुमसे छुगा लेने का प्रयास अपनी हेमकूट-यात्रा से ही आरम्भ कर दिया था। अथवा, हो सकता है, तुम अपने गम्भीर स्वभाव के कारण मेरी आन्तरिक स्थिति को लक्षित करके भी मौन रह गये होगे या उसे ध्यान देने योग्य नहीं समझा होगा। वह पहला प्रश्न, मुझे लगा था, तुम्हारी व्यावहारिक कुशलता का ही सूचक था। क्योंकि तुम्हारा जिज्ञास्य कुछ और ही था। मैं वहाँ कैसे रही, इससे तुम्हें क्या लेना-देना ! गन्धर्वराज की दुहिता के एकान्त सान्निध्य को प्राप्त होने पर भी मुझे वहाँ किसी प्रकार का कष्ट होगा क्या ? ऐसी कोई सम्भावना भी तुम कर सकते थे ? तुम इतना अवश्य समझते थे कि तुम्हारी "पाखी" कोई सामान्य परिचारिका नहीं, अगर मैं सामान्य होती तो तुम्हारी ओर से उतना मुझे कदाचित् प्रश्रय नहीं मिलता ! फिर भी मैं तुम्हारी परिचारिका होने की सीमा से कुछ भी ऊपर उठ सकूँ, ऐसा कुछ भी अभिप्रेत नहीं रह गया था। उसी रूप में मैं सार्थक हो जाऊँ यह अवश्य चाहती थी। और कितनी सार्थक हो सकी, मैं आज तक नहीं समझ सकी हूँ। केवल इतना ही जान सकी हूँ, मेरा उद्धार इस जीवन में नहीं हुआ।

मैं तुम्हें कैसे बताऊँ कि मैं, चाहे उज्जयिनी हो चाहे हेमकूट, सब जगह एक भीड़ के साथ यापन करती रही हूँ। मेरे प्रत्येक व्यवहार को लक्षित करने वाले लोग मिलते रहे हैं। कुछ ने मुझे सराहा होगा, कुछ ने मुझे ईर्ष्या से भर कर देखा होगा और कुछ को मुझ में दोष ही गोचर हुए होंगे। किन्तु मैं इन तीनों प्रकार के लोगों से उदासीन ही रही हूँ। मैं भीड़ में भी अपने एकाकिनी होने की भावना सँजोती रही हूँ और वही मेरे अस्तित्व का मूल आधार बन चुकी थी। मेरा वही अस्तित्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब शत-शत खण्डों में विकीर्ण है। हो सकता है मेरा यह पत्र तुम्हें मेरी उस विकीर्णता को कुछ लक्षित करने में सहायक हो सके। आज इस विकट स्थिति में इसे लिखने का और कोई दूसरा उद्देश्य नहीं। बस एकमात्र अपनी उस आन्तरिक स्थिति को तुम्हें अंशत. सूचित मात्र कर देना है। मैंने तुम्हारे सभी प्रश्न सुनकर कहा था— 'देव, जैसे मैं वहाँ रही, जितने दिन वहाँ रही, देवी की जैसी अनुकूलता रही, जैसी गोष्ठियाँ हुईं, जैसी बातचीत रही, सब कुछ एकाग्र मन से सुनें"। तब मैंने तुमसे निवेदन किया कि देवी कादम्बरी की स्थिति कितनी दयनीयता तक पहुँच चुकी थी। कितनी आसक्ति तुम्हारे प्रति उनके अन्तरतम में उत्पन्न हो चुकी थी, कितनी आन्तरिक व्याकुलता का तुम्हारे अभाव में वे अनुभव कर रही थीं! वे नहीं चाहती थीं कि वह रहस्य मेरे अतिरिक्त किसी पर भी प्रकट हो! यही कारण था कि तुम्हारे चले जाने के पश्चात् मुझे साथ लेकर हिमगृह से निकलीं और अपने निजी वल्लभ-बालोद्यान में चली गयीं। उनके विशाल प्रमदवन का वह एक बहुत ही मोहक स्थान था। वे वहाँ सुधाधवलित वेदिका पर मरकत सोपान के सहारे चढ़ीं और एक प्रशस्त मण्डप में मणिस्तम्भ की टेक लेकर बैठ गयीं।

मैं एक क्षण के लिये उस उद्यान की लुभावनी वसन्त-लक्ष्मी को मुग्ध-भाव से देखती रही। मेरे लिये तो समस्त हेमकूट का दृश्य ही अत्यन्त लोभनीय था। उस उद्यान की छटा से मैं अभिभूत सी हो उठी थी। तब निश्चय ही मेरी आँखें उस परम रम्य वासन्तिक शोभा के आकलन में कुतूहलित हो रही थीं, किन्तु मेरा मन एक अद्भुत उदासीन एवं उजाड़-सी स्थिति का अनुभव कर रहा था। तुम कहोगे, मेरी आँखें कुतूहलित हो रही थीं और मेरा मन उसी क्षण उदास हो रहा था, ये दोनों ही परस्पर असम्बद्ध बातें हैं। मैं इस प्रकार की परस्पर विपरीत स्थितियों को एक ही क्षण में महसूस करने की अभ्यस्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो चुकी हूँ। मैंने केवल ऐसी दशा को महसूस ही नहीं किया है प्रत्युत झेला है और जीया है। तुम शायद उसकी कल्पना नहीं कर सकते हो।

बाहर तो देख रही थी, नये कमलवन अंगड़ाई ले रहे थे और मेरे भीतर कुछ ऐसा था जो निमीलित हो रहा था। रसाल वृक्षों के अकठोर कलिका-कलाप अन्य सबके मन में भले ही उत्कलिकाएँ उत्पन्न कर रहे हों, पर मेरे मन की तरंगें प्रायः शिथिल हो चुकी थीं। कोमल मलय-पवन के चल पड़ने से काम-ध्वज के अंशुक लहराने लगे थे और मेरे हृदय की रक्तिम धौकनियां मन्द पड़ती जा रही थीं। बकुल वृक्षों के मुकुल मदकलित कामिनियों के सीधु-गण्डूप के सेक से पुलकित हो रहे थे और मैं अपने आप में जैसे अवसन्न हो रही थी। जहाँ बाहर का वातावरण अशोक तरुओं के ताड़न के प्रसंग में युवतियों के रमणीय मणिमय नूपुरों के झंकार से मुखरित हो रहा था, वहीं मेरा अन्तरतम सन्नाटा हो रहा था। जहाँ बाहर के सहकार वृक्ष खिलते मुकुलों के परिमल पर मँडराते हुए भौंरो के मंजु गुंजार से भर रहे थे वहाँ मेरे अन्तराल में कोई विकट सूनापन झाँव-झाँव कर रहा था। बाहर जहाँ सम्पूर्ण धरातल पुष्पों के पराग के वालुका-पुलिन से धवलित हो रहा था, वहाँ मेरे अन्तरतम में नैराश्य का धूम-वितान मंडराने लगा था। मधु-मद से विडम्बित भौंरे जहाँ लता-दोलाओं पर झूल रहे थे वहाँ मैं भीतर ही-भीतर निष्कम्प होती जा रही थी। जहाँ बाहर विकसित पल्लवों वाली लवली में बैठे मतवाले कोकिल मधुशीकरों को उल्लसित करके उद्दाम दुर्दिन का दृश्य उत्पन्न कर रहे थे वहाँ मेरे अन्तराल में अपने ढंग से दुर्दिन का श्यामायमान रूप उभरता चला आ रहा था।

मुझे ऐसा लगा था, मेरी पीड़ा जितनी आन्तरिक थी, देवी की उतनी ही गम्भीर होगी। किन्तु मेरे पक्ष में किसी प्रकार की वाह्य व्या-कुलता न थी और देवी थीं कि उनकी वाणी ही कुछ कहते-कहते अवरुद्ध हो जाती। उनके शब्द ही मदनाग्नि से मानों जल जाते, या निरन्तर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवाहित हो रहे नयन-जल के साथ वह जाते, प्रवेश कर रहे दुःखों से मानों आक्रान्त हो जाते, गिरते हुए कामदेव के बाणों से मानों खण्ड-खण्ड हो जाते, निकलते निःश्वासों से निर्वासित हो जाते, हृदयगत चिन्ताओं द्वारा पकड़ लिये जाते, निःश्वास को पी जाने वाले भौंरे ही जैसे उन्हें पी जाते। उनके इस प्रकार के तीव्र विरहजन्य कष्ट को निकट से अनुभव करके मैंने सोचा था कि मेरा वश चले तो मैं सदा के लिये तुम्हें यहीं रहने के लिये बाध्य करूँ। किन्तु जब तुम्हारे महनीय व्यक्तित्व को ध्यान में लाती हूँ तो लगता है कि तुम्हें विधाता ने मात्र प्रणय की संकीर्ण सीमा में यापित हो जाने के लिये इस संसार में नहीं भेजा है। प्रणय तुम्हारे जीवन का एक पक्ष है, जब कि देवी कादम्बरी या हम-जैसियों के समग्र जीवन की तपस्या का फल है। हम उस क्षुद्र फल के लिए, अपने मात्र के सुख के लिये तुम्हारे जीवन के महान् लक्ष्य लोकाराधन से तुम्हें विरत करके प्रणय की सकरी गली में यापित होने के लिये बाध्य कर दें, यह नितान्त स्वार्थ की बात होगी। प्रणय वस्तुतः अपने सीमित रूप में प्रेमी जन का हृदय ही है, किन्तु जब वही अर्थ अपने फैलाव में आता है तो लोकाराधन बन कर प्रकट होता है। तुम्हारे देश में मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने वही "लोकाराधन" का पक्ष अपनाया था और सीता के रूप में प्रणय की संकरी गली में यापित होना पसंद नहीं किया था। यद्यपि मैं अपनी क्षुद्र बुद्धि के अनुसार, राम के उस व्यवहार का हृदय से समर्थन नहीं कर पाती हूँ, क्योंकि उन्हें यह विदित था कि सीता में किसी प्रकार के कलंक का स्पर्श नहीं है। इस परिस्थिति में लोकाराधन का पक्ष प्रबल होते हुए भी एक नारी के प्रति उनका वह व्यवहार प्रशंसनीय नहीं लगता है, तथापि अपने को दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़कर उससे प्राप्त रस को "सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय" समर्पित कर देने वाले राम के स्मरण मात्र से हमारा हृदय पवित्र हो जाता है। किन्तु मैं देवी से यह सब कहूं तो "छोटे मुँह बड़ी बात" होगी। मैंने स्वयं जब अनुभव किया था कि तुम्हारे महाकाश जैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यक्तित्व को अपने क्षुद्र घट की सीमा में समेटने का मेरा प्रयास कितना उपहसनीय होगा, तभी मेरे मन में तुम्हारे प्रति कुछ-कुछ तटस्थता का भाव उदित होने लगा था। उससे भले ही मेरी आन्तरिक दयनीयता बढ़ गयी। मेरे अन्तरतम के सरोवर में उत्पन्न प्रणय कमल की कली खिलने से पूर्व शत-शत खण्डों में बिखर गयी। बहुत कुछ मेरी आशा-लता पर तुषारपात हो गया।

देवी कादम्बरी का प्रणय, हो सकता है, मेरी समझ से बाहर हो, किन्तु इतना अवश्य कह सकती हूं कि वह नितान्त उदात्त है। देवी के अवदात एवं अपरूप लावण्य के साथ उसका चित्रा-चान्द्रमस योग भी मैं कुछ लक्षित कर सकी हूँ। वह तुम्हारे "लोकाराधन" में बाधक होगा, ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती। तुम्हारे व्यक्तित्व के महाकाश में देवी के व्यक्तित्व की स्निग्ध ज्योत्स्ना जब उद्भासित होगी तब तुम्हारे प्रजावर्ग के आनन्द का महासागर लहरा उठेगा। निश्चय ही अतिशय कोमल प्रकृति के कारण देवी के लिये तुम्हारी विरहाग्नि सहज न हो सकी थी, किन्तु उनके निगूढ प्रणय की गहराई के सम्बन्ध में मेरा परिचय ठीक उसी प्रकार अपरिपक्व बना रहा, जिस प्रकार तुम्हारे सही रूप का ज्ञान मैं अपनी सीमाओं के कारण कभी-कभी देवी के द्वारा तुम्हारे विषय में बार-बार किये गये प्रश्नों के कारण घबरा सी उठी थी, और यह भी सोच रखा था कि देवी तुम्हें लेकर शुद्ध शारीरिक स्तर भी जी रही हैं, किन्तु यह मेरा परिशुद्ध भ्रम था। यह ठीक है कि गन्धर्वों के यहाँ शरीर की प्रतिष्ठा अधिक है। वे लोग बनाव-शृंगार के जीवन में ही अधिक यापित होते हैं, जो हम मानवों के यहाँ उत्तम कोटि की भूमि नहीं मानी जाती। किन्तु गन्धर्व होकर भी शुद्ध प्रणय की उत्तम भूमि में जीने का भी उन्हें पूरा अभ्यास है। इतना होने पर भी प्रणय की अतिशय ऊँचाई को वे छू नहीं पाते, क्योंकि उनमें अपने को विरह तप की अग्नि में तपाने का सामर्थ्य प्रायः नहीं होता। एकमात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवी महाश्वेता ही को मैंने पाया कि प्रिय से मिलने की प्रतीक्षा में तपस्विनी होकर यापन कर रही हैं। उनका प्रणय प्रतीक्षा और सुख-त्याग की अग्नि में जल-जलकर सुवर्ण की भाँति निखर उठा है। इसी लिये तुमने एक बार देवी महाश्वेता के चरणों की आराधना के फलस्वरूप ही देवी कादम्बरी के स्नेह की उपलब्धि मानी थी। उस दिन तुम्हारे उस वाक्य से मैं समझ सकी थी कि तुम्हारी दृष्टि में प्रणय की स्थिति इतनी गहराई तक अपने सहज अर्थ में उद्भासित है।

देवी महाश्वेता के विषय में अवसर मिला तो इस पत्र में आगे कुछ लिखूँगी। बस यहाँ इतना संकेत करना चाहूंगी कि उन्होंने मुझे अपने सीमित वार्तालाप के क्रम में जो स्नेह और दुलार दिया था उसे सह पाने की क्षमता मेरे क्षुद्र हृदय को न थी। मुझमें सामर्थ्य होता तो उसी क्षण उनके महिमामय व्यक्तित्व में हमेशा के लिये अपने अस्तित्व को विलीन कर देती। जब मैंने उनके सहानुभूति-भरे वचन सुने तो अपने को सम्हाल न सकने के कारण उनके चरणों में लोट गयी थी और उन्होंने मुझे उठा कर गले लगा लिया था। तब तक मुझे पकड़े रहीं जब तक मैं शान्त न हो गयी। उनके वे सान्त्वना के वचन और पीठ और माथे को बार-बार सहलाने की प्रक्रिया ने मेरे हृदय की तीव्र वेदना को बहुत कुछ शिथिल कर दिया था। मैं अपने जीवन में शायद उनके समक्ष अपने को जितना खोल चुकी थी उतना तुम्हारे साथ भी नहीं हुआ था! तुम्हारी "पाखी" को देवी महाश्वेता से जो कुछ मिला उसी का फल था कि वह तुम्हारे स्नेह को अपने अन्तरतम के एकान्त देवालय में प्रतिष्ठित कर सकी और उसके अर्पित होने का कुछ सामर्थ्य अर्जित कर सकी।

हाँ, तो मैं देवी कादम्बरी की बात तुमसे कह रही थी। जब मैंने उनकी दशा देखी तो पूछा—"देवि, यह क्यों?" तब उन्होंने धीरे से अपनी ललाई आँखें पोछीं। अपनी मृणालकोमल बहुलता से वेदिका में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नियुक्त कुसुमपालिका द्वारा ग्रथित कुसुममाला को उठा लिया और एक भ्रूलता को समुन्नत करके मानो मृत्यु की राह तक रही हों, देखती हुई लम्वी तथा गर्म सांसें भरने लगीं। मैं वार-वार उनसे कुछ कहने के लिये अनुरोध करती रही, किन्तु लज्जा के ही कारण अपना वक्तव्य केतकी के दलों पर अपने नखाग्र से कुछ लिख कर देने लगीं। मैंने देखा कि उनका अधर कुछ-कुछ स्फुरित होने लगा था, फिर भी वे देर तक पृथ्वी तल पर निश्चल दृष्टि डाले वैठी रहीं।

वस्तुतः अनुराग की एक सीमा पार कर जाने पर ऐसा भी कुछ होता है इसका मुझे अहसास न था। मैं प्रणय को एक आन्तरिक आकर्षण मात्र मान कर जीने की अभ्यस्त थी। किन्तु देवी की दयनीय दशा ने मेरी आँखों के सामने प्रणय के एक नये आयाम को उभार कर जैसे उजागर कर दिया था। मेरा तुमसे परिचय और सामीप्य किसी प्रकार थोड़ा नहीं कहा जा सकता था, फिर भी मैं अपने आन्तरिक अनुराग में वेदना की इस भूमि तक पहुँच सकी थी इसमें सन्देह था। किन्तु सामान्य गन्धवों के जीवन में ऐसा होता होगा, इसमें मुझे सन्देह था। हो सकता है देवी कादम्बरी पर देवी महाश्वेता के तपःपूत अनुराग का प्रभावातिरेक हो। जो भी हो, मैं अपने अनुराग की स्थिति को वहुत कुछ भूल-सी गयी। देवी का दुःख ही धीरे-धीरे मेरा दुःख बनने लगा था और मेरा अपना दुःख या तो भूल गया था या शिथिल हो गया था।

मैं जब तक हेमकूट पर रही, ऐसा बहुत ही कम अवसर मिला जब मैं अकेली हुई हूँ। कभी मदलेखा को भेजकर और कभी तरलिका को प्रेषित करके रात हो या दिन मुझे देवी बुलवा लिया करतीं। यह भी एक मुख्य कारण था कि मैं अपने विषय में कुछ भी सोच नहीं पा रही थी। जब मैं प्रथम वार उज्जयिनी में वृद्ध कंचुकी के साथ चलकर तुमसे मिली थी तब तुम्हारे मोहक व्यक्तित्व ने मेरे हृदय को चुम्बक प्रस्तर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की भांति अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था, किन्तु जब तुम्हारे साथ देवी के पास आयी तो देवी ने मुझे जैसे आत्मसात् कर लिया। मेरा अपना अस्तित्व ही विलीन होता अनुभूत होने लगा था। वस्तुतः अब मेरे अस्तित्व का कुछ भी अर्थ नहीं रह गया था। टुकड़े-टुकड़े होकर सैकड़ों खण्डों में बिखरे किसी फूल के अस्तित्व का क्या कोई अर्थ होता है ? किन्तु इतना अवश्य कह सकते हो, कि उस फूल की सुरभि के कुछ कण निकट के वातावरण में अव्यक्त रूप से अवश्य कुछ क्षण के लिये छा जाते हैं। सम्भव है उसी प्रकार की मेरे अस्तित्व की कुछ स्थिति रही हो। किन्तु तब मेरी दृष्टि में उसका कोई अर्थ नहीं रह गया था। मेरी आँखों की नदी जो निरन्तर बहा करती थी सूख-सी गयी थी। मुझे उसकी आर्द्र स्मृति भी न थी।

देवी ने उस समय मुझसे जो बातें की थीं मैं उन्हें यहाँ उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं समझती। उनकी सर्वाधिक प्रिय मैं ही थी। इससे बढ़कर मेरी प्रतिष्ठा क्या हो सकती थी। तुम्हारी "पाखी" को इतना बड़ा सौभाग्य अवश्य मिला, फिर भी वह वराकी उल्लसित नहीं हुई। उस समय वह तुम्हारी परिचारिका मात्र न थी। वह चाहती तो हेमकूट के गन्धर्व-राज चित्ररथ की दुलारी कन्या को अपनी परिचारिका बना सकती थी। किन्तु मैं अपने सौभाग्य की उस कड़वी घूंट को पीती चली जा रही थी और चुप थी। देवी की प्रकृति मर्यादाओं की सीमा पार करने वाली न थी। इस कारण तुम्हें कुछ भी सन्देश देना अथवा उपहार के रूप में कुछ भी भेजना उनके लिए सम्भव नहीं हुआ। तुम जो उनके हृदय में प्रणय की अग्नि उद्दीप्त कर आये थे वह उन्हें भस्म कर देने पर तुली हुई थी। यहाँ तक कि वे शरीरान्त करने का निर्णय-सा ले चुकी थीं।

मैं कुछ क्षण के लिये स्तब्ध हो गयी। मैं कैसे उन्हें सम्हालूँ, यह सोच न सकी। उन्होंने मेरे पूछने पर, कि तुम्हारी ओर से क्या अपराध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ, तो बताया कि तुम उन्हें प्रतिदिन स्वप्न में पंजरबद्ध शुकसारिकाओं को दूती बनाकर अपने गुप्त सन्देश भेजते हो, सोई हुई उन्हें व्यर्थ के मनोरथ मन में लाकर उनके कान के दन्तपत्रों पर संकेत स्थल लिख जाते हो, सोई हुई उनके पास मनोहारी शब्दों में मदलेख भेजते हो, जिनके कुछ अक्षर स्वेद जल से मिटे होते हैं, अपने अनुराग से बलपूर्वक उनके चरणों में अलक्तक लगाते हो, अविनीत तुम स्वप्न में अपने को उनके चरणों में गिरा कर अपने को भाग्यशाली मानते हो, उपवनों में अकेली वे डर कर भागती हैं तो उनका पल्ला पकड़कर जैसे रोकते हो, जब उन्हें सखियाँ सौंपती हैं तो वे मुँह फेर लेती हैं, फिर भी तुम प्रगल्भता से उनका आलिगन कर लेते हो, उनके वक्ष पर कुटिल पत्रलताएँ मिलकर मानो अपनी बाँकी-टेढ़ी प्रकृति से उन्हें भी कुटिलता की सीख देते हो, कपटी चाटुकार बन कर तुम उनके कपोलों पर उत्पन्न स्वेद जल को अपने मुख के पवन से सुखाने का प्रयत्न करते हो, आदि।

निश्चय ही तुम नहीं, तुम्हारे अभाव में देवी को पुष्पायुध काम ने उस दयनीय स्थिति तक पहुँचा दिया था। किन्तु देवी को उस स्थिति में सम्हालने का यह परम कठिन कार्य नियति ने मुझे ही सौंपा ! वस्तुतः यह मेरे पक्ष में कितनी उद्वेजक बात थी ! मैं स्वयं अपने को सम्हाल लूँ यह कठिन हो रहा था। यद्यपि मैं अपना सुख-दुःख उस समय भूल चुकी थी; तथापि नियति का मेरे साथ खेला जा रहा वह नाटक मेरी आँखों के सामने ही जैसे मेरा मखौल उड़ाने के समान था। मैं भीतर-ही-भीतर कुछ-कुछ रोष के वशीभूत थी। किन्तु कुछ भी नहीं कर सकती थी। एक घायल दूसरे घायल को जहाँ तक सम्हाल ले वही उसकी सफलता है। वह तो संयोग की बात है कि मेरा प्रयास कुछ-कुछ सफल हुआ। मैं कुछ भी सफलता का श्रेय लूँ यह मेरी कोई कामना नहीं। इतनी अवश्य मेरी कामना है कि तुम देवी को यथाशीघ्र उपलब्ध हो जाओ। मेरा क्या होगा, यह प्रश्न न तो तुम्हारे लिये चिन्त्य है और न देवी के लिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

याद आता है देवी महाश्वेता के साथ मेरी एकान्त वातचीत का वह प्रसंग, जब मुझे अपने को अनावृत कर देना पड़ा था। एक निर्व्याजपेशल हृदय वाली तपस्विनी के सामने अपने को छिपा रखना मेरे लिये कठिन हो गया था। वे उन दिनों देवी कादम्बरी के अस्वास्थ्य और आग्रह के कारण कुछ समय के लिये हेमकूट पर ही रह गयी थीं। उनके अच्छोद सरोवर के तट का शान्त रम्य सिद्धायतन मैंने देख रखा था। हेमकूट पर रह कर भी वे वहां के विलासमय वातावरण से असम्पृक्त थीं। बाह्य जीवन के चाकचिक्य, सुखाशाओं की ओर से उनकी निर्लिप्तता ने उनकी तपस्या को और भी निगूढ़ एवं आन्तरिक बना दिया था। उनकी साधना एक अद्भुत तेजोमय दीप्ति के साथ उनके मुख पर निरन्तर उल्लसित हो रही थी। मैं बड़ी कठिनाई के देवी कादम्बरी से छिप कर उनसे मिलने का समय निकाल सकी थी। किसी समय उनकी एक अत्यन्त आत्मीय दूती ने मेरे कान में आकर मुझसे मिलने की उनकी इच्छा व्यक्त की थी। जाने क्यों, मैं स्वयं उनसे मिलना चाहती थी। उन्हें देखते ही मेरे मन में अकारण ही कुछ आत्मीयता का भाव उदित हो चुका था। तुमने उनके प्रतीक्षारत जीवन की अनेक घटनाओं से मुझे अवगत करा रखा था। प्रिय से मिलन की प्रतीक्षा में यापित देवी के हृदय में दूसरों के कष्ट एवं पीड़ा को अपने सहज कारुण्य से आत्मसात् कर लेने का एक विलक्षण औदार्य उत्पन्न हो चुका था।

जब मैं उनसे एकान्त में मिली तब उन्होंने मुझे गले लगा लिया था। मैं अपने आप में लज्जावश सिमटती जा रही थी, किन्तु उनके सहज स्नेह ने मुझे उनके साथ सहज हो जाने के लिये क्षमता दे दी थी। बात मैं आरम्भ करूँ इसकी प्रतीक्षा न करके स्वयं बोल उठी थीं-"पत्रलेखा, कुमार के अभाव में यहाँ तेरा मन लग रहा है?" मैं एक क्षण के लिये यह सोच न सकी, कि देवी के उस प्रश्न का तात्पर्य क्या था-"देवि,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवी कादम्बरी के सहज स्नेह-सौहार्द के कारण मैं सब कुछ भूल गयी हूँ।" तब वे कहने लगीं—"पत्रलेखा, तेरे मन में कुमार के प्रति सहज अनुराग से मैं परिचित हूँ। मैं केवल यह जानना चाहती हूँ, कि तू उनकी परिचारिका मात्र है, या और कुछ"। देवी के इस दूसरे प्रश्न से मुझे एक तीव्र झटका लगा था। मैं मूर्च्छित-सी हो गयी, किन्तु उसी क्षण उन्होंने मेरी स्थिति का अनुमान करके सम्हालते हुए कहा—"तू व्यर्थ घबरा रही है। मैं कुछ अन्यथा भाव से नहीं पूछ रही हूँ। मेरा हृदय तेरी आन्तरिक पीड़ा की कुछ-कुछ कल्पना करके व्यथित है। मुझे तू अपने परिचय से वंचित न कर।" तब मैंने उनसे निवेदन किया कि मैं हतभाग्य कुलूतेश्वर की एकमात्र दुहिता हूँ···आदि। मेरी व्यथा-कथा सुनकर देवी आर्द्र हो गयीं और निश्छल भाव से बोलीं—"पत्रलेखा, तेरे मन में कुमार के प्रति सहज अनुराग ने मुझे प्रभावित किया है। एक मानवी के दुर्बल हृदय से गन्धर्वियों के सुखाकांक्षी हृदय की तुलना नहीं है। कादम्बरी मेरी अभिन्न सखी है और कुमार को वह उपलब्ध करके सफल होगी, किन्तु उसका सफल अनुराग तेरे इस आध्यात्मिक तपःपूत प्रणय की तुलना में नहीं आ सकता। तू असफल हो कर भी सार्थक है पत्रलेखा!" देवी का इतना मात्र कहना था कि मैं अपने को रोक न सकी और उनके चरणों में लोट गयी। तब उन्होंने मुझे गले से चिपटा लिया और रोती हुई मुझे सान्त्वनापूर्वक देर तक सहलाती रहीं। उन्होंने स्वयं मुझे आशंकित जानकर बताया कि वे इस रहस्य को देवी कादम्बरी या अन्य किसी से नहीं कहेंगी। और मैं उनके पास से देवी कादम्बरी के निकट चली आयी थी।

देवी महाश्वेता के निकट तुम्हें लेकर इस प्रकार मेरा खुल जाना मुझे दूर तक प्रभावित कर गया था। मैंने सोच रखा था, तुम्हारे चरणों में एक नदी की भांति आजीवन प्रवाहित होती रहूंगी। किन्तु तब लगा, मेरा जीवन उस उपयोग का भी नहीं रह गया। इतने निरर्थक जीवन को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किस प्रकार ढोया जा सकता है, जो सब ओर से एक घनीभूत तमस्काण्ड में परिणत हो चुका है, जिसमें आशा की किरण का लेश भी नहीं। यह वह वाटिका है जिसके सभी सम्बद्ध पनाले सूख गये हैं, जिसमें वसंत का स्पर्श मात्र न हुआ, जिसके विकसित होने के पूर्व हर कली मुरझाकर शत-शत खण्डों में विखर गयी, जिसे ग्रीष्मकाल के धूल भरे उष्ण बवंडरों ने सब ओर से तहस-नहस करके छोड़ दिया है। इस स्थिति में केवल "वाटिका" कहलाने मात्र के लिये वह क्या कायम रहे ?

मेरी आँखों के सामने अपना ही जीवन एक विस्तृत मरुमय प्रदेश की भाँति सपाट फैला हुआ दिखायी देने लगा था, जिसमें अनादि काल से प्रावृट्काल के सजल मेघ भूल कर भी नहीं बरसे। मैं अपने जीवन में इस दयनीयता का जाने कितनी बार अनुभव कर चुकी हूँ, जिसे कुछ-कुछ इस पत्र के पूर्व पृष्ठों में सकेतित भी किया है। किन्तु अब अनुभव के पक्ष में मेरी दयनीयता एक सीमा पार कर चुकी है। मैंने पहले सोचा था, अधिक से अधिक अपने जीवन में आर्या देवरक्षिता की शरणगत होकर उनके साथ विचरण करूंगी और अपनी क्षमता के अनुसार खिन्न और दीन लोगों की सेवा में समर्पित हो जाऊंगी। किन्तु, अब शायद उतना भी मुझसे नहीं हो सकेगा। मैं नहीं समझती थी कि तुम्हारे प्रति मेरा अपना प्रणय किसी पर इतना प्रकट होगा। किन्तु देवी महाश्वेता ने मुझे सब प्रकार से खोल दिया। सहानुभूति का इतना शैत्य मुझ जली को उपशम प्रदान तो कर गया, किन्तु मेरे अस्तित्व को एक जले हुए कालिमामय काष्ठ के रूप में परिणत कर गया। अब मैं उसे क्यों कर सम्हाले फिरूँ ?

मैं तुम्हारे जीवन में किसी रूप में प्रवेश कर पायी या नहीं, मैं नहीं जानती। लेकिन तुम मेरे जीवन में जिस रूप में प्रवेश प्राप्त कर चुके हो वह मेरे लिये एक बड़ी विकट स्थिति उत्पन्न कर चुका है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरी अस्तित्व-वीणा के सभी तार टूट गये हैं। वह अब सर्वदा के लिये मूक हो चुकी है। अब तुम्हारे स्पर्श का संवेदन उसके महामौन को एक क्षण के लिये भी भंग नहीं कर सकता। तुम चाहो, तो उसे उठा कर अपने कक्ष के एक कोने में रखवा दो और उसकी ओर से निश्चिन्त हो जाओ। तुम एक प्रतापी पिता के इकलौते राजकुमार हो। तुम्हारी अभ्यस्त उंगलियों के स्पर्श की प्रतीक्षा में कितनी वीणाएँ विधातृसृष्टि में निर्मित हो चुकी होंगी। उन्हें तुम अपने सुकुमार कराघातों से सन्तृप्त करो और अपने आस-पास के वातावरण को स्वर-लहरियों से भर दो।

तुमने कभी कहा था, मैं पंजरगत पाखी नहीं हूँ। सचमुच मैं अब पंजरगत नहीं हूँ। मेरे लिये तुम्हारे व्यक्तित्व का महाकाश अवश्य निर्मुक्त है। किन्तु तुम शायद नहीं जानते कि मैं अब उड़ान भरूँ, ऐसी मुझमें शक्ति कहाँ? मेरे पंख अतिशय दुर्बल हैं और बहुत कुछ दुर्भाग्य की प्रखर किरणों से झुलस गये हैं। यदि मैं उड़ने का साहस भी करूँ तो कुछ ही ऊपर जाकर गिर जाऊँगी। मेरे पावों में भी वह शक्ति नहीं कि अपने बोझ को भी सम्हाल सकूँ। हो सकता है, तुम्हें विदित हो, अगर नहीं तो जान लो। देवी ने अपनी प्रियसखी महाश्वेता के समक्ष एक बड़ी अद्भुत प्रतिज्ञा कर रखी है–"तेरे दुखी रहते मैं अपना पाणिग्रहण नहीं कराऊँगी।" देवी अपनी प्रतिज्ञा में शिथिल होंगी, ऐसा मैं नहीं समझती। अपनी सखी के प्रति उनकी इस सहानुभूति से तुम्हारे प्रणय का कोई अन्तर्विरोध नहीं रहा। फिर भी तुम बहुत समय तक उज्जयिनी के सभी आत्मीय जनों के स्नेह की उपेक्षा नहीं कर सकते थे और न हेमकूट की गन्धर्वराजपुत्री देवी कादम्बरी का अनुराग भूल सकते थे।

इस बीच घटनाएँ बड़ी तेजी से घटित हुईं। हेमकूट से केयूरक आया, किन्तु उसने देवी का कोई सन्देश नहीं सुनाया। बस उसने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनके विरह-सन्ताप को विस्तार से सुनाया। इधर तुम थे कि वैशम्पायन की प्रतीक्षा कर रहे थे, जिससे अपने विषय में कुछ भी निर्णय ले सको। जब तुम्हें यह सूचना मिली कि सेना दशपुर तक आ गयी तो तुम कुछ वैशम्पायन के आगमन की कल्पना से आश्वस्त हुए और मुझे केयूरक से साथ देवी कादम्बरी की सान्त्वना के लिये सन्देश देकर भेज दिया। तुमने कुछ बातें मेरे लिये भी कही थीं, जो मेरे प्रति तुम्हारे सहज स्नेह की सूचक थीं। तुमने कहा था-"पाखी, तू मेरे विरह में दुखी न होना। अपने शरीर के प्रसाधन में अनादर मत करना। आहार के समय का अतिक्रमण न होने देना। किसी अनजाने मार्ग से न जाना। बिना विचारे किसी जगह न रहना। किसी अपरिचित को अपना भेद न बताना। सदा अपने शरीर का खयाल रखना......।" तुमने अन्त में बहुत ही स्पष्ट कहा था—"देवी के प्राण मुझे मुझसे भी प्यारे हैं, जिससे मैं तुझे उनके हित भेज रहा हूँ। मेरा जीवन भी तेरे हाथ में है। इसलिये तू यत्नपूर्वक निश्चित रूप से अपनी रक्षा करना।" मेरे प्रति तुम्हारे वक्तव्य ने मुझे कुछ भी प्रभावित किया हो ऐसा मुझे नहीं लगा, क्योंकि धीरे-धीरे मैं तुम्हारी ओर से तटस्थ एवं उदासीन हो चुकी थी। तुम्हारे और देवी कादम्बरी के बीच माध्यम की भूमिका अदा करना ही मेरा एकमात्र कार्य रह गया था। और, मैं उसे पूरी तत्परता के साथ पूरा करना चाहती थी। इस प्रकार यन्त्रवत् प्रवृत्त मुझे सब कुछ कर जाना था और अपने को सब प्रकार से यही करते मिटा देना था।

किन्तु आगे जो घटना घटी उससे मैं दहल उठी। तुम वैशम्पायन से मिलने के लिए चल पड़े और स्कन्धावार में उन्हें न पाया तो व्याकुल हो उठे। परिजनों ने उनसे सम्बद्ध घटनाओं को सुनाया। तुम अपने मित्र के कहीं अच्छोद सरोवर की ओर चले जाने और फिर न प्राप्त होने से बहुत अधिक अव्यवस्थित हो गये। तुम पुनः उज्जयिनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गये और वहाँ से चल कर पुनः सिद्धायतन पहुँचे और देवी महाश्वेता से भेंट की। तुम्हें जब विदित हुआ कि वैशम्पायन से सम्बद्ध घटना में देवी का भी योग था तो तुम्हारा हृदय, भ्रमर के आघात से मुकुल की भाँति विदीर्ण हो गया !

मैं तुम्हारे आगमन की सूचना मिलते ही देवी कादम्बरी और अन्य परिजनों से साथ सिद्धायतन पहुँची। वहाँ देखा, तुम्हारा निष्प्राण शरीर पड़ा हुआ था। मैं उस घटना के प्रभाव से देर तक मूच्छित पड़ी रही। किन्तु जब देवी के हाथ के स्पर्श से तुम्हारे शरीर से एक विलक्षण ज्योति निर्गत हुई तभी आकाशवाणी सुनी कि देवी से पुनः मिलन इसी शरीर में होगा। तब मैं अपने आपको रोक न सकी और इन्द्रायुध को साथ लेकर इस अच्छोद सरोवर के अर्पित होने जा रही हूँ। तुम्हारी सेवा में अर्पित यह पशु अपना काम पूरा कर चुका है। किन्तु मेरा काम, पूरा हुआ ऐसा मैं नहीं मानती। एक मानवी के रूप यहाँ जन्म लेकर मैंने अपने को अपने अन्तरतम की पिपासा से सम्पृक्त पाया है और वह पिपासा, मुझे लगता है, तव शान्त होगीं जब तुम्हें किसी भी जन्म में उपलब्ध कर सकूँगी। तभी मेरा उद्धार होगा।

तुम्हारे निकट सम्पर्क में रहने से जो तुम्हारा सहज स्नेह मुझे मिला है उसका मेरे पास कोई प्रतिदान नहीं है। एक क्षुद्र परिचारिका तुम्हें क्या दे सकती है ! फिर भी तुमने उसे अनुगृहीत किया, यही क्या उसके लिये कम था ? उसने तुम्हारे लिये उतना ही किया, जितना वह कर सकती थी। किन्तु उसे आत्मतोष नहीं हो सका। वह अतृप्ति की वेदना से आजीवन ग्रस्त रही। न तो वह तुम्हारी माँ को अपनी सेवा समर्पित कर कृतकृत्य हो सकी और न तुम्हें पाकर वह अपने को कृतार्थ कर सकी। तुम्हें प्राप्त करना, निःसन्देह उसकी सीमा से बाहर था। फिर भी इस व्यथा को वह जीती रही और उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिताप से झुलसती रही। यह अच्छोद सरोवर उसकी उस अग्नि को शान्त कर सकेगा, इसमें सन्देह है। वह अपने बुझे-बुझे से अस्तित्व में भी एक विलक्षण परिताप की अग्नि को संजो कर पीड़ित रही है। तुम्हारी "पाखी" अब अपनी को मिटा देने के लिये तैयार है। सम्भव है इस प्रक्रिया से वह अपने उड़ान के लिये और सामर्थ्य एव तुम्हारे व्यक्तित्व के महाकाश का विस्तार पा सके। नियति ने आगे उसके विषय में क्या निर्णय कर रखा है वह नहीं जानती। बस इतना जानती है कि उसका उद्धार किसी-न-किसी जन्म में होना है।

मैं टूट कर शत-शत खण्डों में बिखर चुकी हूँ। तुम्हें संबोधित करके लिखी हुई ये पक्तियां, सम्भव है किसी काल में तुम्हारे दृष्टिगत हो जायं। अगर न भी हों तो जिस वातावरण में बैठकर उन्हें मैं लिख चुकी हूँ, अव्यक्त रूप में वे उसमें गूंजती रहेंगी और तुम इस ओर से कभी गुज़रोगे तब तुम्हें अचानक व्याकुल कर देंगी। तब शायद तुम एक क्षण के लिये अपनी "पाखी" को याद करो। उस समय देवी कादम्बरी तुम्हारे साथ होंगी। मेरा तुमसे इतना ही निवेदन है, उस समय देवी के धम्मिल्ल से एक कुसुम-कलिका को निकाल लेना और उसे अपने नखाग्र से शत-शत भागों में खण्डित कर आकाश में उछाल देना और आगे चल पड़ना। मेरी स्मृति में इससे बढ़कर तुम कुछ करो ऐसी कुछ भी अपेक्षा मेरी नहीं है। मेरी कथा शेष हो रही है। तुम्हें अपने आभ्यन्तर प्रणिपात समर्पित कर रही हूँ। पत्र लिखते-लिखते मेरी उंगलियाँ घायल हो चुकी हैं और रक्त उनसे रिस-रिस कर मसि का काम कर रहा है। अब नहीं लिखा जाता। अपनी पाखी का यह अन्तिम प्रमाण स्वीकार करना……।

तुम्हारी ?
पत्रलेखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पत्रलेखा : रवीन्द्रनाथ की दृष्टि में

......संस्कृत साहित्य में और एक अनादृता है। उसके साथ पाठकों का परिचय कराने में मैं कुंठित हूँ। वह बड़ी कोई नहीं, वह 'कादम्बरी' की पत्रलेखा है। उसने जहाँ आकर अति स्वल्प स्थान में आश्रय ग्रहण किया है वहाँ उसके आने का कोई प्रयोजन नहीं था। स्थान उसके पक्ष में बड़ा संकीर्ण है, एक इधर-उधर पैर बढ़ाने में भी संकट है।

इस आख्यायिका की पत्रलेखा जो सुकुमार सम्बन्ध सूत्र में आबद्ध हुई है वैसा सम्बन्ध और किसी साहित्य में कहीं नहीं देखते। अथ च, कवि ने अति सहज, सरल चित्त से इस अपूर्व सम्बन्ध बन्धन की अवतारणा की है। किसी प्रकार यह ऊर्णा तन्तु की भाँति इतना भी खिंचा नहीं कि क्षण भर में छिन्न होने की आशंका मात्र उत्पन्न हो सकती है।

युवराज चन्द्रापीड़ जब अध्ययन सम्पूर्ण करके प्रासाद में लौट कर आये तब एक दिन प्रभात काल में उनके भवन में कैलास नाम के एक कंचुकी ने प्रवेश किया। उसके पीछे एक कन्या अनतियौवना, मस्तक में इन्द्रगोप कीट की भाँति अवगुण्ठन, ललाट पर चन्दन तिलक, कटि में हेम-मेखला, कोमल तनुलता की प्रत्येक रेखा मानों सद्य: नूतन अंकित है, ऐसी तरुणी ने लावण्य की प्रभा के प्रभाव से भवन को पूर्ण करके क्वणित–मणिनूपुर-कलित चरण से कंचुकी का अनुगमन किया। कंचुकी ने प्रणाम करके क्षितितल पर दाहिना हाथ रखकर ज्ञापन किया— "कुमार, आपकी माता महादेवी विलासवती की आज्ञा है–यह कन्या पराजित कुलूतेश्वर की दुहिता, वन्दिनी है। इसका नाम पत्रलेखा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस अनाथा राजदुहिता को मैंने दुहिता—निर्विशेष भाव से अब तक पाला है। अब इसे तुम्हारी ताम्बूलकरंकवाहिनी बनाकर भेज रही हूँ। इसे सामान्य परिजन की भाँति न देखना, बालिका की भाँति लालन करना, अपनी चित्तवृत्ति की भांति चापल्य से निवारण करना, शिष्या की भांति देखना, हृदय की भाँति समस्त विश्रम्भ व्यापार में इसे अभ्यन्तर में लेना एवं इस कल्याणी को इस प्रकार समस्त कार्य में नियुक्त करना जिससे यह तुम्हारी उचित परिचारिका हो सके।"

कैलास के यह बात कहते ही पत्रलेखा ने उन्हें अभिजात प्रणाम किया एवं चन्द्रापीड़ ने उसे अनिमेष लोचन से सुचिरकाल निरीक्षण करके "अंबा की जो आज्ञा" यह कह कर दूत को विदा कर दिया। पत्रलेखा पत्नी नहीं, प्रणयिनी नहीं, किंकरी भी नहीं, वह पुरुष की सहचरी है। इस प्रकार का सखीत्व दो समुद्रों के मध्यवर्ती एक बालुका-मय तट की भाँति किस प्रकार रक्षित रह सकता है! नवयौवन कुमार-कुमारी के बीच अनादि काल का जो चिरंतन प्रबल आकर्षण है, वह इस संकीर्ण बाँध को दोनों ओर से तोड़ क्यों नहीं देगा!

किन्तु कवि ने उस अनाथ राजकन्या को चिर-दिन ही इस अप्रशस्त आश्रय में रख छोड़ा है। तिल भर भी इस सीमा से उसे किसी दिन बाहर नहीं होने दिया। हतभागिनी वन्दिनी के प्रति कवि की इसकी अपेक्षा अधिक उपेक्षा और क्या हो सकती है; केवल एक सूक्ष्म यवनिका के भीतर रहने पर भी वह अपना स्वाभाविक स्थान ग्रहण न कर सकी। पुरुष के हृदय के समीप वह जगी रहती है, पर भीतर पदार्पण नहीं करती। किसी दिन असतर्क वसन्त की हवा से इस सतीत्व पर्दा का एक प्रान्त भी न उड़ा।

अथ च, सखीत्व के बीच लेशमात्र भी अन्तराल न था। कवि ने कहा है कि पत्रलेखा ने भी उसी प्रथम दिन से चन्द्रापीड़ के दर्शनमात्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से ही सेवारससमुपजातानन्दा होकर, दिन नहीं, रात नहीं, उपवेशन में, उत्थान में, भ्रमण में छाया की भाँति राजपुत्र का पार्श्व परित्याग न किया। चन्द्रापीड़ के भी उसके देखने का वाद प्रतीक्षण उपचीयमाना महती प्रीति उत्पन्न हुई। प्रतिदिन उसके प्रति कृपा भाव रखने लगे एवं समस्त विश्वासकार्य में इसे आत्म हृदय से अव्यक्तिरिक्त समझने लगे।

यह सम्वन्ध अपूर्व सुमधुर है, पर इसके वीच नारी के अधिकार की पूर्णता नहीं है। नारी के साथ नारी का जिस प्रकार लज्जा बोध-हीन सखी-भाव रह सकता है, उसी प्रकार पुरुष के साथ उसका असंकोच व अनवच्छिन्न नैकट्य पत्रलेखा की नारी-मर्यादा के प्रति कादम्बरी काव्य की जो एक प्रकार की अवज्ञा झलकती है, उससे क्या पाठकों पर आघात नहीं पहुंचता? किसका आघात; आशंका का नहीं, संशय का नहीं। क्योंकि कवि यदि आशंका और संशय का लेशमात्र भी स्थान रखते, तो हम समझते कि वे पत्रलेखा के नारीत्व के प्रति कथंचित् सम्मान कह कर ग्रहण करते हैं किन्तु इन दोनों तरुण-तरुणी के बीच लज्जा, आशंका और संदेह की दोदुल्यमान स्निग्धच्छाया तक नहीं। अपने अपूर्व सम्वन्धवश पत्रलेखा ने अन्तःपुर तो त्याग ही दिया है, किन्तु स्त्री-पुरुष के परस्पर समीपवर्ती होने पर स्वभावतः एक प्रकार के संकोच से, भय से, यहाँ तक कि सहास्य छल से जो एक लीलान्वित कम्पमान मानसिक अन्तराल स्वयं विरचित हो जाता है, इनके बीच वह भी नहीं है। इसी कारण इस अन्तःपुरविच्युता अन्तः पुरिका के लिए सदा ही क्षोभ उत्पन्न होता है।

चन्द्रापीड़ के साथ पत्रलेखा का नैकट्य भी असामान्य है। दिग्विजय-यात्रा के समय एक हथिनी के पृष्ठ पर पत्रलेखा को सम्मुख रखकर राजपुत्र आसन ग्रहण करते हैं। शिशिर में, रात को जब चन्द्रापीड़ अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शय्या के अनतिदूर शयननिषण्णा पुरुष-सखा वैशम्पायन के साथ बात करते हैं तब निकट में क्षितितलविन्यस्त "कुथ" (चादर) पर सखी पत्र-लेखा प्रस्तुत है।

अन्त में कादम्बरी के साथ चन्द्रापीड़ का जब प्रणय संघटन हुआ तब भी पत्रलेखा अपने क्षुद्र स्थान में अव्याहत भाव से रही। क्योंकि पुरुष-चित्त में नारी जितना आसन पा सकती है उसका संकीर्णतम प्रान्त मात्र पर वह अधिकार करता है--वहाँ जब महामहोत्सव के लिये स्थान है, तब इस प्रान्त से वंचित करना आवश्यक नहीं हुआ।

पत्रलेखा के प्रति कादम्बरी के मन में ईर्ष्या आभासमात्र भी न थी। यहाँ तक कि कादम्बरी को जब विदित हुआ कि चन्द्रापीड़ के साथ पत्रलेखा की घनिष्ठ प्रीति है, तब वह उसे परम प्यारी सखी समझने लगी। कादम्बरी काव्य में पत्रलेखा, जिस अपरूप भूखंड के बीच है, वहाँ ईर्ष्या, संशय, संकट, वेदना कुछ भी नहीं है। वह स्वर्ग की भाँति निष्कंटक है, पर उसमें स्वर्ग का अमृत बिन्दु कहाँ है!

प्रेम का उच्छ्वसित अमृत-पान उसके सम्मुख ही हो रहा है। उसकी गन्ध से भी क्या किसी दिन उसकी किसी एक शिरा का भी रक्त चंचल नहीं हुआ? क्या वह चन्द्रापीड़ की छाया है? राजपुत्र के तप्त यौवन का ताप भी क्या उसे स्पर्श नहीं कर सका? कवि ने इस प्रश्न का उत्तर देने की भी उपेक्षा की है। काव्य सृष्टि में वह पत्रलेखा इतनी उपेक्षिता है!

कुछ काल कादम्बरी से साथ रहकर पत्रलेखा जब संवाद लेकर चन्द्रापीड़ से पास लौट आयी और जब उसने मन्द मुसकान के द्वारा दूर से ही उनके प्रति प्रीतिप्रकाश करके नमस्कार किया, तब पहले से ना स्वभावतः प्रियतमा थी ही, तिस पर जब कादम्बरी के पास से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसाद सौभाग्य पाकर आयी, तो और भी परम प्रियतमा हुई। इस कारण उसका यथेष्ट समादर प्रकट करने के लिए युवराज ने आसन से उठकर उसे आलिंगन किया।

चन्द्रापीड़ के इस आदर और आलिंगन द्वारा ही कवि ने पत्रलेखा का अनादर किया है। हम कहते हैं कि कवि अंधे हैं। कादम्बरी और महाश्वेता की ओर ही बराबर एक टक देखने के कारण उनकी आँखें पथरा गयी हैं। वे इस क्षुद्र बन्दिनी को देख ही न सके। इसके भीतर जो प्रणयतृषार्त और चिर-वंचित एक नारी-हृदय भी है; यह बात वे एकदम भूल गये हैं। बाणभट्ट की कल्पना सदा मुक्तहस्त रही, अस्थान और अपात्र में भी उसने अपनी सम्पत्ति की अजस्र वर्षा की है। केवल इस अनाथा बन्दिनी के प्रति ही उसने अपनी सारी कृपणता दिखायी है। पक्षपाती और अन्धे होकर कवि पत्रलेखा के हृदय की निगूढ़तम बातों को बिलकुल जानते ही नहीं। वे अपने मन में समझते हैं कि समुद्र-वेला को जहाँ तक आने की आज्ञा है, वह वहीं तक आकर ठहर गयी है। पूर्ण चन्द्रोदय में भी वह हमारी आज्ञा उल्लंघन नहीं कर सकती। कादम्बरी पढ़कर मन में यही होता है कि अन्यान्य नायिकाओं की बातें जहाँ अनावश्यक बाहुल्य के साथ वर्णित हुई हैं, वहाँ पत्रलेखा की बातों का कुछ भी वर्णन नहीं हुआ।

काव्येर उपेक्षिता: "प्राचीन साहित्य"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रक्षिप्त :

एक अनाम पत्र और ग़ालिब का चित्र

उन दिनों काशी में, अध्ययन के क्रम में, एक प्रसिद्ध विद्वान् प्राध्यापक के सम्पर्क में आने का अवसर मिला था। दुर्भाग्य से कुछ ही समय वाद उनका स्वर्गवास हो गया। फिर भी उनके परिवार के लोगों के साथ सम्पर्क कायम रहा। एक दिन उनके घर पहुँचा तो देखा कि एक पुराने ट्रंक से कुछ पुरानी फ़ाइलें निकाली और धूप में डाली जा रही थीं। यूंही उन पर दृष्टि डाली तो एक फ़ाइल पर ध्यान केन्द्रित हो गया। संस्कृत में लिखे कुछ विस्तृत पत्र! मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, क्योंकि संस्कृत से दिवंगत प्राध्यापक का सम्बन्ध प्राय: नहीं था। परिवार के सदस्यों की अनुमति से वह पूरी फ़ाइल ही मुझे प्राप्त हो गयी। किन्तु अपने आवास पर उसे लाकर भी परीक्षाओं के प्रवर्तमान होने के कारण उस सामग्री पर अपना अपेक्षित ध्यान न दे सका। जव अवसर मिला तव मैंने उसे एक-एक पन्ने व्यवस्थित करते हुए पढ़ना आरम्भ किया और इस निर्णय पर पहुंचा कि संस्कृत में लिखित सभी पत्र वाणभट्ट की कादम्बरी वाली 'पत्रलेखा' द्वारा लिखित हैं। मेरा आश्चर्य और भी बढ़ गया, क्योंकि "पत्रलेखा", जो एक रचना की पात्र है वह पत्र कैसे लिख सकती है? उस फ़ाइल में प्राप्त एक अनाम पत्र तथा प्रसिद्ध उर्दू शायर ग़ालिब के एक चित्र ने एक ओर मेरे इस प्रश्न का कुछ समाधान तो कर दिया, किन्तु दूसरी ओर मुझे और भी अनेक उलझनों में डाल दिया। वह पत्र बड़ी शीघ्रता में अस्पष्ट अक्षरों में लिखा गया था और उसकी भाषा हिन्दी थी। किसी प्रकार मैं उस पत्र को पढ़ सका। वह कुछ इस प्रकार था—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रिय, तुम्हारा पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुमने "पत्रों" का अनुवाद आरम्भ कर दिया है। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारा अनुवाद अन्य अनुवादों जैसा "जड़" हो जाय। आशा है तुम इस बात का ध्यान रखोगे। उनके प्रकाशन में त्वरा न करना। मैं निकट भविष्य में आने वाला हूँ। तब तुम्हारा काम देखूँगा।

तुम्हें यह विदित होना चाहिए कि ये पत्र किसी अज्ञात महिला ने गुरुदेव के पास भेजे थे और सूचित किया था कि उसके भावजगत् की लहरियां अचानक "पत्रलेखा" की भटकती आत्मा से टकरा गयी थीं, ये "पत्र" उनकी ही झंकृति के परिणाम हैं। साथ में गुरुदेव के नाम उसका एक पत्र भी होगा, जिसे आशा है, तुमने मूल "पत्रों" के साथ जोड़ लिया होगा। सम्भव है तुम जैसे लोग भावजगत् की बातों पर विश्वास न करो, किन्तु मैं उन पर पूरा विश्वास करता हूँ। यदि अवसर मिला तो इस सम्बन्ध में और भी रहस्य की बातें तुम्हें बताऊँगा। अभी बस इतना ही।

शुभेच्छु

मैंने बहुत प्रयास करके कुछ अव्यवस्थित संस्कृत वाले पत्रलेखा के पत्रों के अधूरे अनुवाद को पूरा किया, किन्तु संलग्न पत्र के सम्बन्ध में कुछ भी निर्णय न कर पाने की स्थिति में प्रायः आन्दोलित रहा। इतना तो निश्चित था कि "पत्रों" को लिखने वाली महिला ने उन्हें शान्तिनिकेतन के पते पर भेजा होगा। क्योंकि गुरुदेव को उसी पते पर निश्चित रूप से सामग्री प्राप्त हो सकती थी। हो सकता है गुरुदेव ने समयाभाव से अपने निकटवर्ती किसी संस्कृत विद्वान् को पूरी सामग्री दे दी हो और उन्होंने भी अपने किसी शिष्य को उनका अनुवाद कर जाने के लिए प्रेरित किया हो। उस शिष्य ने अनुवाद कार्य कुछ दूर तक करके किसी कारण छोड़ दिया था। किन्तु पूरी सामग्री उन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिवंगत प्राध्यापक के पास कैसे पहुँच गयी थी, इस सम्बन्ध में मेरी जिज्ञासा का कोई ठोस समाधान अब तक नहीं मिला। वह तो संयोग ही था जो वह सामग्री मेरे हाथ लग गयी। मैंने दिवंगत प्राध्यापक के परिवार के सदस्यों से भी उस व्यक्ति के सम्बन्ध में जिज्ञासा की, किन्तु किसी ने कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया।

उन दिनों श्रद्धेय "पण्डित जी" काशी आ चुके थे। मैंने उनसे पूछा तो कुछ देर तक वे मौन रहे, फिर बाद में बहुत जोर से हंसने लगे। उनकी वह हंसी साहित्य-जगत् में अपरिचित नहीं। फिर उन्होंने कहा—"कभी फ़ुर्सत के समय आना।" और यह कह कर वे बाहर से आये कुछ अतिथियों के साथ चले गये। दुर्भाग्य से वह "फ़ुर्सत का समय" ही नहीं आया कि मैं पण्डितजी से अपनी जिज्ञासा का समाधान पाता।

इस बीच नाना कारणों से काशी से बाहर जाना पड़ा और बहुत समय तक पूरी सामग्री मेरे पास पड़ी रही। उस सामग्री से सम्बद्ध दूसरी आश्चर्यजनक वस्तु थी, चिट्ठी लिखते हुए उर्दू के महान् शायर ग़ालिब का एक पुराना चित्र। "पत्रों" से उस चित्र का कोई संबंध या सामंजस्य, बहुत सोचने पर भी नहीं बैठ रहा था। इस क्रम में "दीवान-ए-ग़ालिब" और ग़ालिब के पत्रों के हिन्दी में प्रकाशित "संग्रह" भी मैंने पढ़े, किन्तु कुछ भी समाधान न मिला। उर्दू-साहित्य के जानकार कुछ लोगों से पूछ-ताछ भी की, किन्तु वे भी कुछ कह न सके। अचानक "दीवान-ए-ग़ालिब" के एक शे'र पर ध्यान गया, वह है—

"दर्देदिल लिखूँ कब तक, जाऊँ उनको दिखला दूँ,
उंगलियाँ फ़िगार अपनी ख़ामा खूँ-चकाँ अपना।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह शे'र पत्रलेखा की लेखनी से भी "चन्द्रापीड़ के नाम" लिखे उसके पत्र के अन्त में यथावत् रूपान्तरित हो गया है। साहित्य के क्षेत्र में यह वहुत पुराने समय से विचार चला आ रहा है कि भावना के क्षेत्र में मनुष्य की शाश्वत अनुभूतियाँ कभी-कभी विलकुल एक सी वाणी में अभिव्यक्त हो जाती हैं, यद्यपि उनमें समय, स्थान और वक्ता का कोई समन्वय नहीं होता, .. और पत्रों की उस फ़ाइल में ग़ालिब के उस चित्र के पड़े होने का मुझे इसके अतिरिक्त कुछ भी अर्थ नहीं लगा।

पत्रों का अनुवाद कहाँ तक व्यवस्थित एवं ग्राह्य हो सका है इसका निर्णय सहृदय जनों पर छोड़ता हूँ। कहीं-कहीं उन्हें पढ़ते हुए परस्पर विरोधी भी वातें मिल सकती हैं, किन्तु मैंने उसी रूप में उन्हें रख छोड़ा है।

सम्भव है, अव भी ऐसे व्यक्ति हों जो पत्रों की अज्ञात लेखिका के बारे में जानकारी रखते हों। दुर्भाग्य से अव "पण्डित जी" नहीं रहे जिन्हें उसकी सम्भवतः कुछ जानकारी थी। "पत्रों" के अनेक प्रसंग और घटनाएँ वाणभट्ट की कादम्वरी के प्रसंगों और घटनाओं से समान रूप से मिल जाती हैं। यह स्वाभाविक भी है। उन्हें प्रस्तुत में संकेतित करना आवश्यक नहीं समझा गया है।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्रा
भरतनिधि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi